अंक 2
संख्या 2

मंगलवार
21 जनवरी
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. स्टीयरिंग कमेटी का चुनाव 1

2. लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव 2

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 21 जनवरी, सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में दिन के ग्यारह बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आरम्भ हुई।

स्टीयरिंग-कमेटी का चुनाव

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्यों को मुझे सूचित करना है कि स्टीयरिंग-कमेटी में चुने जाने के लिए निम्नलिखित तेरह सदस्यों के नाम नियमित रूप से तजवीज हुए हैं:

1. माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद।
2. माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल।
3. सरदार उज्ज्वल सिंह।
4. श्रीमती जी. दुर्गाबाई।
5. श्री एस.एच. प्रेटर।
6. श्री किरणशंकर राय।
7. श्री सत्यनारायण सिन्हा।
8. श्री अनन्तशयनम् आयंगर।
9. श्री एस.एन. माने।
10. श्री के.एम. मुन्शी।
11. श्री दीवान चमनलाल।
12. श्री सोमनाथ लाहिरी।
13. श्री लक्ष्मीनारायण साहू।

केवल ग्यारह सदस्य चुने जाने हैं और यदि कोई नाम वापस न लिये गये, तो सानुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार इकहरे हस्तांतरात्मक मत द्वारा, आज ही शाम के 3 और 5 बजे के बीच अंडर-सेक्रेटरी के कमरे (कमरा नम्बर 24, सतह की मंजिल, कौंसिल हाउस) में मेम्बरों का चुनाव होगा।

दूसरा कार्य, पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया जाने वाला प्रस्ताव है। वे मुझे यहां नहीं दिखायी पड़ते। इसलिए हम बहस जारी रखेंगे और यह प्रस्ताव बाद में पेश होगा।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री राजकुमार चक्रवर्ती** (बंगाल : जनरल): क्या मैं पूछ सकता हूं कि स्टीयरिंग-कमेटी की सदस्यता के उम्मीदवारों के नाम वापस लेने के लिए कब-तक का समय है?

***अध्यक्ष:** आज शाम के 3 बजे चुनाव के आरम्भ होने से पहले, किसी भी समय अब हम प्रस्ताव पर बहस जारी करते हैं। श्री माधव मेनन।

लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव—(गत संख्या से आगे)

***श्री के. माधव मेनन** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय! पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं। मैं जानता हूं कि इस प्रस्ताव के लिए किसी के बहुत समर्थन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसका बहुत कम विरोध हुआ है। यह बहुत आवश्यक है कि अब हम इस प्रस्ताव को अविलम्ब स्वीकार कर लें। जैसा कि सर अल्लादी ने अपने भाषण में कहा है, किसी भी विधान-परिषद् की कार्यवाही में आप यह खोज निकालने में समर्थ न होंगे कि उस परिषद् का अन्य कार्य आरम्भ होने से पहले, ऐसा कोई प्रस्ताव पेश अथवा स्वीकार नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में हम काफी प्रतीक्षा कर चुके हैं और मेरे विचार में अब और देर करके हम अपने कर्त्तव्य से च्युत होने के ही भागी होंगे। हमें अनुभव करना चाहिये कि सारा देश आशा-भरी दृष्टि से हमारी ओर देख रहा है—यह जानने के लिए—कि हम उसके लिए क्या करने जा रहे हैं। एक-मात्र आपत्ति यदि मैं उसे आपत्ति कह सकूँ, डाक्टर जयकर द्वारा पेश किया गया संशोधन है। सिद्धांत: डॉ. जयकर के संशोधन और मूल प्रस्ताव में अधिक अन्तर नहीं है, सिवा इसके कि डॉ. जयकर चाहते हैं कि हम लोग प्रतीक्षा करें ताकि उन लोगों को, जो इस समय यहां उपस्थित नहीं हैं, प्रस्ताव के विचार में भाग लेने का अवसर मिल सके। डॉ. जयकर का कहना है कि इस समय हमारे हिस्सेदारों में से दो अनुपस्थित है, जिनमें से एक की अनुपस्थिति का कारण हमें मालूम नहीं हैं और दूसरे का यहां उपस्थित होना ही असम्भव है। उचित ही है कि हमें इन लोगों की प्रतीक्षा करनी चाहिये। डॉ. जयकर ने कहा था कि 20 जनवरी तक, जब कि हमारा दूसरा अधिवेशन होने को है, हम इन लोगों की प्रतीक्षा क्यों न कर लें। श्रीमान्, उनकी इच्छानुसार अब हम यह प्रतीक्षा कर चुके। आशा है कि डॉ. जयकर को यह आपत्ति करने का अवसर अब न रहेगा कि हम लोगों ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया।

डॉ. जयकर की यह आपत्ति कि मंत्रि प्रतिनिधिमंडल के 16 मई के वक्तव्य की शर्तों के अनुसार आरम्भिक बैठक में इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार करना हमारे लिए वर्जित है, स्वयं उनके ही प्रस्ताव के विरुद्ध है, जिसमें बताया गया है कि इस परिषद् के उद्देश्य व लक्ष्य क्या होने चाहियें। डॉ. जयकर ने कहा है कि उक्त प्रस्ताव में विधान के मूल तत्वों का उल्लेख न होना चाहिये। मैं नहीं समझता कि हम लोगों ने उसमें विधान की मूल बातों का उल्लेख किया है; हमने तो उसमें यही बताया है कि हमारे उद्देश्य एवं लक्ष्य क्या हैं। डॉ. जयकर ने कहा (और उनके ऐसा कहने पर मुझे आश्चर्य भी हुआ) कि यदि मुस्लिम लीग सम्मिलित न होगी, तो देशी राज्य भी शामिल न होंगे। साथ ही, डॉ. जयकर ने बताया अथवा यों कहिये कि चित्र खींचा, कि यदि मुस्लिम लीग के शामिल होने से पहले हम लोगों ने यहां यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, तो देश में एक हिन्दुस्तान, एक पाकिस्तान और एक राजस्थान बनकर ही रहेगा। मुझे अनुभव हुआ कि जिस समय वे तीन 'स्थानों'—हिंदुस्तान, पाकिस्तान तथा राजस्थान—के प्रादुर्भाव का चित्र खींच रहे थे, उस समय मानों वे कल्पना लोक में निर्बाध विचरण कर रहे हों। मुझे निश्चय है कि ऐसा संयोग न होगा और ऐसे संयोग के विचार से हमें यह प्रस्ताव स्वीकार करने से डरना भी न चाहिये। यदि इस आधार पर कि अन्य लोग यहां उपस्थित नहीं हैं, हमने और विलम्ब किया, तो निश्चय ही इस प्रकार हम लोगों की जिद को ही बढ़ावा देंगे, मैं चाहता हूं कि हम ऐसा न करें, बल्कि प्रस्ताव का कार्य आगे बढ़ायें और बिना अधिक विलम्ब किये उसे स्वीकार कर लें।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय! पिछले अधिवेशन में हममें से कुछ लोगों का संकोचवश यह मत था कि यह प्रस्ताव बाद की किसी तारीख के लिए स्थगित कर दिया जाये, ताकि अनुपस्थित लोग भी उसके विचार में भाग ले सकें। इसका यह मतलब नहीं कि मैं स्वयं प्रस्ताव के पक्ष में पूर्णतया नहीं था। एक कांग्रेसजन तथा एक भारतीय होने के नाते, मैं पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव में प्रतिपादित सिद्धान्तों से पूर्णत: सहमत हूं। इसका यह अर्थ नहीं कि उक्त सिद्धान्तों का पहले कभी प्रतिपादन नहीं हुआ। किन्तु हम चाहते थे कि अपने विधान-निर्माण कार्य के आरम्भ में ही, हमारे लक्ष्य एवं उद्देश्यों का स्पष्टीकरण इस सभा में कर दिया जाये, और उसमें सभी सभासद सम्मिलित हों। फिर भी

[श्री बी. दास]

मुझे दु:ख है कि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि, जिनमें से कुछेक सार्वजनिक जीवन में हमारे साथी रहे हैं, अनुपस्थित हैं। उस समय मूर्खतावश हम में से कुछ लोगों ने सोचा था कि वे अब आ जायेंगे और हमारे साथ राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं अधिकारों की घोषणा करेंगे और इस प्रकार आने वाली स्वतन्त्रता के प्रभात के आनन्द में रजामंदी से अपना हस्सा लेंगे। पर यह सब नहीं होने का। समझ में नहीं आता कि मुस्लिम लीग के ये सदस्य जो पिछले बीस-तीस वर्षों से हमारे मित्र, प्रगाढ़ मित्र, प्रगाढ़ साथी तथा प्रगाढ़ सहयोगी रहे हैं, वर्तमान अवस्था में किस प्रकार पृथक् रह सकते हैं।

मैं नहीं समझ सकता कि वे क्या चाहते हैं। कहा जाता है कि वे दो राष्ट्र चाहते हैं, वे पाकिस्तान चाहते हैं अभी उस दिन महात्मा गांधी ने कहा है कि उन्हें पाकिस्तानी सूबे अथवा एक पाकिस्तान देश ले लेने दो, जिससे कि हम जान सकेंगे कि मुस्लिम राष्ट्र का सर्वोच्च आदर्श क्या है, जिससे कि वे दिखा सकें कि पाकिस्तान का देश हिन्दुस्तान से या पंथिस्तान से, जिसकी कि मांग सिख करते हैं, एक अधिक सुशासित देश है। हमारे मुस्लिम मित्रों को किस बात का डर है और उनकी अनुपस्थिति के कारण क्या हैं? महाशय, सम्बन्धित पार्टियां तीन हैं—ब्रिटिश, मुस्लिम लीग और कांग्रेस। ब्रिटिश सरकार हमारे मार्ग का रोड़ा है। 6 दिसम्बर के वक्तव्य द्वारा, सम्राट् की सरकार ने अपने 16 मई के वक्तव्य का फिर जो स्पष्टीकरण किया है उससे भी यही प्रकट होता है कि अंग्रेज स्वाधीनता प्राप्ति में भारत की सहायता नहीं कर रहे हैं। किन्तु वह कौन-सी बात है, जो हमारे मुस्लिम मित्रों को रोक रही है? महाशय, भारतीय व्यवस्थापिका सभा का काम संभालने के मेरे आरम्भिक काल में, 'कायदे आजम' मेरे राजनैतिक गुरु रहे हैं एक मित्र के नाते मैं उनकी अब भी प्रशंसा करता हूं। किन्तु मुस्लिम लीग के नेता के रूप में मैं उन्हें नहीं समझ सका। मैं नहीं समझता कि वे क्या चाहते हैं, मुस्लिम लीग कार्य-समिति के अनेक सदस्य मेरे मित्र हैं और यहां उपस्थित अनेक लोगों के मित्र हैं। मैं नहीं समझ पाता कि अब्दुल मतीन चौधरी या नवाब इस्माईल खां या राजा गजनफर अलीखां या हुसैन इमाम तथा अन्य लोग हिन्दुस्तान में अथवा यूनियन में हिन्दुओं के साथ किस प्रकार भाई-भाई की तरह नहीं रह सकते। दुर्भाग्यवश,

मुझे यह जानकर खेद होता है कि मुस्लिम लीग के अधिकांश नेता तथाकथित हिन्दुस्तान में ही रहते हैं। अभी तक मैंने बंगाल या पंजाब के पाकिस्तानी सूबों का ऐसा कोई मुस्लिम लीगी नहीं पाया, जो इस देश अथवा संसार के पथ-प्रदर्शन के लिए किन्हीं महान् राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रवर्त्तक हो या जिसने इन सिद्धान्तों की व्याख्या की हो। मेरा काम यहां, कांग्रेस और मुस्लिम लीग का मतान्तर बताने का नहीं है। मेरा काम इस मंच से मुस्लिम लीग से यह आग्रह करने का है कि वे लोग जो बाहर हमारे मित्र हैं, इस सभा में भी तुरन्त हमारे मित्र बनें। यदि पाकिस्तान के विषय में उनके विचार हमसे भिन्न हैं, तो उन्हें अपने विचार हमें बताने चाहियें। उन्हें, हमको बताना चाहिये कि आया वे एक स्वाधीन (जनतन्त्रात्मक) पाकिस्तान चाहते हैं, या वे औपनिवेशिक-पाकिस्तान चाहते हैं? वे क्या चाहते हैं, मैं मुस्लिम लीग के अपने मित्रों से अनुरोध करना चाहता हूं कि वे हमारे साथ अपने अति प्राचीन सम्पर्क पर, पड़ोसियों की पुरानी भावनाओं पर विचार करें और शीघ्र ही इस सभा की कार्यवाही में शामिल हो जायें, ताकि हम सब भारत को स्वाधीनता प्राप्त कराने में, जिसे हम हृदय से चाहते हैं, एक-साथ मिलकर कार्य कर सकें।

मुख्य प्रस्ताव पर, मैंने कुछ भी नहीं कहा है, क्योंकि उसमें उल्लिखित प्रत्येक बात से मैं सहमत हूं। इन वर्षों में, इन्हीं बातों का हम स्वप्न देखते रहे हैं। मि. जिन्ना तथा अपने मुस्लिम लीगी मित्रों से एक बार फिर मैं यही आग्रह करता हूं कि वे यहां आयें और हमें बतायें कि हम लोग क्या गलती कर रहे हैं, वे हिन्दुओं को भी बतायें कि हिंदू क्या गलती कर रहे हैं, और मि. जिन्ना को एक स्वाधीन राष्ट्र बनाने नहीं देते। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।

***श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय! हमारे माननीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये इस स्मरणीय प्रस्ताव पर मुझे अपने विचार प्रकट करने का जो अवसर आपने कृपा करके प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव का पूरे हृदय से समर्थन करने में मुझे हर्ष है। इससे पहले अनेक अन्य वक्ता भी इस प्रस्ताव का समर्थन कर चुके हैं और उन्होंने इस प्रस्ताव के उपस्थित तथा स्वीकार किये जाने की आवश्यकता, उपयोगिता तथा

[श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त]

औचित्य पर अपने विचार प्रकट किये हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों से, उन्होंने इस प्रस्ताव पर बहस की हैं और उन्हीं तर्कों को फिर दोहरा कर मैं इस सभा का मूल्यवान् समय नहीं लेना चाहता। प्रस्ताव का समर्थन करते हुए, मैं, आपकी अनुमति से, केवल कुछ बातें ही कहना चाहता हूं।

सर्वत्र ही यह स्वीकार किया जा चुका है कि जो विधान-परिषद् एक स्वतंत्र भारत का विधान निर्मित करने जा रही है, वह इस देश के जन-समुदाय के अथक कष्ट-सहन तथा भारी त्याग का ही परिणाम है। अतएव, जो भी विधान तैयार किया जाये, वह ऐसा होना चाहिये कि उसके द्वारा जल-कल्याण की वृद्धि और समस्त देश का लाभ हो सके।

विधान के निर्माता, जो जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं, अत्यन्त उत्तरदायी व्यक्ति हैं और अपने दायित्वपूर्ण कर्त्तव्य का पालन करते हुए वे सतर्कता एवं बुद्धिमत्ता के साथ ऐसा विधान निर्मित करेंगे, जो सभी सम्बन्धित लोगों के लिए अधिक-से-अधिक हितकर हो।

उन सदस्यों की नेक-नीयती, ईमानदारी और सच्चाई पर हमें पूरा विश्वास रखना चाहिये, जिन्होंने हमारे देशवासियों की आकांक्षाओं की पूर्ति और देश में शांति एवं सम्पन्नता की वृद्धि करने वाला विधान प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

विधान निर्मित करने में जिन सिद्धान्तों का अनुसरण होगा और विधान में किन बातों की व्यवस्था रहेगी—यह सब उपस्थित प्रस्ताव में बताया जा चुका है।

सौभाग्यवश प्रस्ताव में कहा गया है और यह उचित ही है कि जो भी विधान तैयार किया जायेगा, उसके अन्तर्गत भारत के सभी लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय का, पद, अवसर आदि की समानता का आश्वासन दिया जायेगा और वह उन्हें प्राप्त होगा। इससे प्रकट है कि सब लोगों को उन्नति के लिए उपयुक्त सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि जो भी विधान तैयार होगा, उसमें अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुए तथा कबायली इलाकों और दलित तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों के संरक्षण की पर्याप्त व्यवस्था रहेगी। अल्पसंख्यकों तथा उन अन्य लोगों को, जिनके संरक्षण का इस प्रकार आश्वासन दिया गया है, यदि कुछ सन्देह हो तो इसे दूर करने के लिए यह काफी होना चाहिये।

मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि कुछ क्षेत्रों में, विधान-परिषद् में तथाकथित अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के कारण भी शंका उत्पन्न की जा रही है। इस सम्बन्ध में मेरा सविनय निवेदन है कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग के लिए उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त विधान का निर्माण, उस वर्ग के प्रतिनिधित्व की केवल पर्याप्तता पर नहीं, बल्कि अंततोगत्वा विधान-निर्माण का निर्देशन करने एवं उस पर नियंत्रण रखने वाले जनसमूह के सद्भाव पर अवलम्बित होता है। अतएव, मेरे तुच्छ विचार से, महत्व की चीज जनसमूह की सद्भावना है, न कि विधान-निर्मात्री संस्था में किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रतिनिधित्व का परिमाण।

अतएव, किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का यह आपत्ति करना कि उसके प्रतिनिधियों की संख्या पर्याप्त नहीं, ठीक नहीं है; क्योंकि यदि वह सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों की, जिन पर किसी विशेष मामले का निर्णय बहुत हद तक निर्भर होगा, सहानुभूति से वंचित हो जाता है, तो उसके प्रतिनिधियों की संख्या थोड़ी अधिक हो या कम, उससे कोई लाभ न होगा।

विधान-निर्माताओं की सच्चाई और ईमानदारी में विश्वास करके, परिगणित जातियों, आदिवासियों, सिखों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लोइंडियनों तथा पारसियों के अल्पसंख्यक सम्प्रदायों ने, विधान-परिषद् में, उनका प्रतिनिधित्व कम एवं अपर्याप्त होने पर भी, विधान-निर्माण कार्य में सहयोग देने का निश्चय किया है और यह उचित ही है। विधान-निर्माण में जन-समूह की आकांक्षाएं तथा उसका बल ही अब पथ-निर्देशक होगा।

विधान-निर्माण के कार्य में मुस्लिम लीग भी विधान-परिषद् में सम्मिलित होती यदि वह इस धारणा के वशीभूत न होती कि भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना से ही उसका सर्वाधिक हित-साधन होगा। मैं बता देना चाहता हूं कि मुस्लिम लीग को छोड़कर, देश में और कोई भी देश के विभाजन के पक्ष में नहीं है। आशा है कि भविष्य में, जनता का प्रत्येक वर्ग संयुक्तभारत की आवश्यकता अनुभव करेगा।

श्रीमान्, अब माननीय डॉक्टर जयकर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है और यह आशा करनी चाहिए कि संशोधन के प्रस्तावक महोदय उसे वापस ले सकेंगे।

श्रीमान्, हमारा यह महान् देश, जिसे दुर्भाग्यवश विदेशी आधिपत्य में रहना पड़ा

[श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त]

है और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने हर सम्भव प्रकार से जिसका शोषण किया है, शीघ्र ही स्वाधीन होने तथा हर प्रकार के शोषण से मुक्त होने का अवसर लाभ करेगा।

आदिवासी जन, जो अन्य लोगों के साथ-साथ ब्रिटेन-वासियों तथा उनके एजेंटों द्वारा अधिक से अधिक शोषित हुए हैं, अब यह विचार करके प्रसन्न हैं कि भविष्य में वे इस शोषण से त्राण पायेंगे और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति का सुअवसर उन्हें प्राप्त होगा।

श्रीमान्, चूंकि बहुत अधिक माननीय सदस्य प्रस्ताव का समर्थन कर चुके हैं अतएव मैं सभा का बहुमूल्य समय अधिक नहीं लेना चाहता। इन्हीं कुछ शब्दों से मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और आशा करता हूं कि वह सर्व-सम्मति से स्वीकार किया जायेगा।

स्टीयरिंग कमेटी का चुनाव

***अध्यक्ष:** सभा में बोलने के लिए दूसरे वक्ता का नाम पुकारने से पहले, मुझे घोषणा करनी है कि श्रीयुत् सोमनाथ लाहिरी तथा श्री लक्ष्मीनारायण साहू ने अपने नाम वापस ले लिये हैं। (*हर्ष-ध्वनि*) अतएव यह घोषित किया जाता है कि यह निम्नलिखित सदस्य, 'स्टीयरिंग कमेटी' के लिए निर्वाचित हो गये हैं—

1. माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद।
2. माननीय सरदार वल्लभ भाई जे. पटेल।
3. सरदार उज्ज्वल सिंह।
4. श्रीमती जी. दुर्गाबाई।
5. श्री एस.एच. प्रेटर।
6. श्री किरणशंकर राय।
7. श्री सत्यनारायण सिन्हा।
8. श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर।
9. श्री एस.एन. माने।
10. श्री के.एम. मुंशी।
11. दीवान चमनलाल।

यह घोषित किया जाता है कि ये लोग निर्वाचित हो गये हैं। अब तीसरे पहर मतगणना न होगी।

लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव—(गत भाषणों से आगे)

***रेवरेंड जेरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू का यह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव जिस भावना से ओत-प्रोत है, उसकी मैं हृदय से प्रशंसा करता हूं। श्रीमान्, हमारी जनता के सभी वर्ग नि:संकोच भाव से स्वीकार करते हैं कि लोकतंत्रात्मक प्रणाली व्यापक रूप से प्रयोग में आये, किन्तु श्रीमान्, मैं नहीं जानता कि वे लोग जो इस पर अपना मौखिक विश्वास प्रकट करते हैं, उसका तात्पर्य भी पूरी तरह समझते हैं या नहीं और व्यावहारिक जीवन में हर प्रकार से, उसका पालन करने को तैयार हैं या नहीं।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव के किसी अंश के प्रति चाहे जो भी आपत्तियां की गयी हों, किन्तु मैं समझता हूं कि इसमें जनता के लिए संचालित जनता द्वारा जनता की सरकार की लोकतन्त्रात्मक प्रणाली के हर प्रकार स्वीकार्य सिद्धांत पर बड़ी सावधानी से पर्याप्त विचार किया गया है। प्रस्ताव जिस भावना से अनुप्रेरित है, यदि उसी भावना का प्रयोग इस सभा द्वारा निर्मित होने वाले विधान का विवरण निश्चित करने में होता रहा और यदि प्रान्तों तथा केन्द्र का दैनिक शासनप्रबन्ध भी इसी भावना से किया गया तो मेरा विचार है कि हमारी जनता में किसी वर्ग के लिए आपत्ति का कोई कारण न रह जायेगा और साथ ही संतोष की भावना का उदय होगा।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषण में कहा है कि प्रस्ताव के उद्देश्यात्मक अथवा सैद्धांतिक अंश में जो मत व्यक्त किया गया है, उसे सभी स्वीकार करते हैं, जिससे आभासित होता है कि प्रस्ताव का उक्त अंश राजनैतिक एवं पत्रकार जगत में एक साधारण बात है। महाशय, मुझे निश्चय नहीं है कि यह बात संसार के किसी भी भाग के लिए बिलकुल सच मानी जा सकती है और यदि स्थूल रूप में वह सच भी मान ली जाये, तो भी हमें मानना पड़ेगा कि विशेष अवसरों पर हमें इन साधारणत: स्वीकार्य तथ्यों को दोहराने और गम्भीरतापूर्वक एवम् जोरदार शब्दों में उन्हें घोषित करने की आवश्यकता होती है। महान् यूरोपीय राजनीतिज्ञ टैलीरेण्ड के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब किसी भाव के विषय में यह आपत्ति की गई कि उक्त भाव तो ''बिना कहे ही मान्य है'' तो इसके उत्तर में टैलीरेण्ड ने कहा ''एक बार उसे और दोहरा देने से, उसका प्रभाव और बढ़ जायेगा''।

[रेवरेंड जेरोम डीसूजा]

मैं समझता हूं श्रीमान् कि इस गम्भीर अवसर पर लोकतन्त्र में हमारे विश्वास की यह घोषणा एक गम्भीर, सार्वजनिक एवं अखंडनीय ढंग से की जा रही है। इस दृष्टि से मेरा विश्वास है कि हमारी जनता का प्रत्येक वर्ग, जिस सावधानी से नपी-तुली तथा सुव्यवस्थित विधि से उक्त विश्वास व्यक्त किये गये हैं, उसका स्वागत करेगा। नि:संदेह इन सबके स्पष्टीकरण एवं विस्तार की आवश्यकता होगी। श्रीमान्, मुझे इस सभा का ध्यान उस दोहरे खतरे की ओर भी आकृष्ट करने की अनुमति दीजिये, जिसके प्रति मेरे विचार से, तैयार रहना आवश्यक है। एक ओर, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के उन सिद्धान्तों को प्रयोग में लाने में, जिनके विषय में इस भूमिकात्मक घोषणा में समुचित व्यवस्था है, रजामंदी और समझा-बुझाकर कार्य करने के बजाय, उसे बल द्वारा अथवा केन्द्रीय राज्य के अधिकार व शक्ति द्वारा अधिक सम्पन्न करने की इच्छा रोकना कठिन होगा, मैं कहता हूं कि देश-प्रेम और शीघ्रता से देश की उन्नति व सुधार के विचार से ही ऐसी इच्छा को रोक सकना कठिन होगा। यह ऐसी बलवती इच्छा है, कि अनेक महान् पुरुष तथा अपने देश के प्रेमी उसके शिकार हो चुके हैं। किन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं का इस प्रकार का दमन रोकने के लिए जिस ढंग से व्यवस्था की जायेगी, मुझे आशा और विश्वास है, उसी के द्वारा हमारा महान् देश, सहमति तथा एक-मति के उक्त सिद्धांतों के पालन का एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा और राज्य को इतना शक्तिशाली नहीं बनायेगा कि जैसा कि पिछले किसी वक्ता ने कहा है, मनुष्य का व्यक्तित्व यंत्रवत् हो जाये। श्रीमान्, यह एक खतरा है।

दूसरा खतरा भी वास्तविक है। यह वह खतरा है, जिसका सम्बन्ध अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों से है। खतरा इस बात का न होगा कि ईर्ष्या अथवा विरोध अथवा औचित्याभाव की किसी भ्रमात्मक धारणा द्वारा अल्पसंख्यकों के किन्हीं विशेषाधिकारों अथवा आवश्यक संरक्षणों का अतिक्रमण होगा। मैं नहीं समझता कि भारत के महान् बहुसंख्यक सम्प्रदाय अथवा उनके अतिसम्मानित प्रतिनिधियों में से कोई भी, इस प्रकार उक्त विशेषाधिकारों तथा संरक्षणों के अनुचित अतिक्रमण के दोषी होंगे। पर विशुद्ध किन्तु गलत देश-प्रेम और सादृश्य एवं सामंजस्य की इच्छा से—जो न तो संभव है और न शायद जिसकी आवश्यकता ही है—वे ऐसी व्यवस्था

को स्वीकृति देने की कोशिश करें, जो अल्पसंख्यकों तथा विशेष समुदायों को गहरी ठेस पहुंचाये और दुखी कर दे।

इस परिषद् के पिछले अधिवेशन में एक वक्ता ने, कुछ ऐसी बातों के साथ, जो इस सभा के सभी लोगों को स्वीकार्य थीं, एक ऐसी बात कही—अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में कुछ ऐसा विचार व्यक्त किया—जिसके विषय में मैं सविनय यही निवेदन कर सकता हूं कि संभवतः उसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। उक्त वक्ता ने कहा था कि 'कोई भी राष्ट्र, कोई भी महान् जन समुदाय, अपने अंतर्गत स्थायी अल्पसंख्यक जातियों के रहते हुए खुशहाल और जीवित नहीं रह सकता और किसी-न-किसी प्रकार हमें उनको अपने में ही 'जज्ब कर लेना' होगा। उक्त वक्ता ने इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उदाहरण भी दिया और कहा कि वहां पर अल्पसंख्यकों को 'जज्ब कर लेने' की यह प्रतिक्रिया शुरू भी हो चुकी है। श्रीमान्, जिस भाव से यह बात कही गई, उसे भी मैं समझता हूं। भाव यह था कि कुछ-न-कुछ सामंजस्य रहना चाहिए और समान हितों तथा अधिकारों को समान रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए तथा राज्य एवं राष्ट्र को इन्हीं समान हितों एवं अधिकारों की स्वीकृति के आधार पर संघटित किया जाना चाहिये। यह अत्यावश्यक है किन्तु, श्रीमान्, सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा अन्य किसी रूप में 'जज्ब कर लेने' की बात ऐसी है, जिससे हमें अपनी रक्षा करना आवश्यक है। मुझे निश्चय है कि बहुसंख्यक सम्प्रदायों की यह इच्छा नहीं है और न इस गंभीर विचारपूर्ण सभा का ही ऐसा मत है कि किसी भी अल्पसंख्यक जाति पर वे इस प्रकार की कोई भी चीज लागू करें, जिसके फलस्वरूप वह—अल्पसंख्यक जाति—इस प्रकार 'जज्ब' हो जाये। श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि स्वीट्जरलैंड जैसे देश के उदाहरण को हम ध्यान में रखें। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी उनकी एक भाषा तथा एक ही सर्व-स्वीकृत विधान होने के बावजूद, भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों को अपनी मातृभूमि की संस्कृति उन्नत करने की अनुमति प्राप्त है, चाहे उनकी यह मातृभूमि जर्मनी हो अथवा इटली या फ्रांस। कनाडा के विशाल कामनवेल्थ में, आज भी जनता के दो वृहत् समुदाय हैं, जिनमें एक तो स्काटिश तथा आंग्ल लोगों का समुदाय है और दूसरा प्राचीन फ्रांसीसी समुदाय है। किंतु ये दोनों ही समुदाय वहां पूर्ण सद्भाव से रहते हैं, अपनी-अपनी मातृभूमियों के रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और स्वयं अपने साहित्य की उन्नति करते हैं। कनाडा की

[रेवरेंड जेरोम डीसूजा]

कामनवेल्थ के एक जन-समुदाय के लिए अन्य जन-समुदायों से सहयोग करना और उस देश के यश एवं सफलता के लिए, जो एक ही राष्ट्र माना जाता है, कार्य करना नितांत सरल हो गया है। स्वीट्जरलैंड में तीन ऐसे समुदाय हैं, जिनकी भाषाएं और धर्म भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु वे एक राज्य-संघ के रूप में संघटित हैं, और यह राज्य-संघ ईर्ष्यालु लोगों के आक्रमण से अपनी रक्षा करना भली-भांति जानता है और शताब्दियों से उसने निश्चित रूप से अपनी रक्षा की है। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस देश की शक्ति उसके विभिन्न सम्प्रदायों के सदस्यों की शक्ति पर आधारित होगी। और ये सदस्य तब तक अपनी पूरी शक्ति न प्राप्त कर सकेंगे, जब तक कि वे अपने विश्वासों एवं आदर्शों के अनुसार स्वयं आचरण नहीं करते। जिस सांस्कृतिक स्वराज्य के पक्ष में मैं बोल रहा हूं और राष्ट्रीय शक्ति के प्रतिकूल न होने की दशा में जिसका वचन भी दिया जा चुका है, वह कुछ अर्थों में राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध दीखते हुए भी, उसके अनुकूल ही है। इसमें संदेह नहीं, इन सांस्कृतिक विचित्रताओं को बढ़ा-चढ़ा कर बताने के भी ढंग हैं। किन्तु मुझे निश्चय है कि विभिन्न धार्मिक विश्वास रखते हुए भी, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, आदि सारे सम्प्रदायों के लोगों के लिए इस महान् देश से समान रूप में प्राप्त विरासत को स्वीकार करना और ऐसी समानता और सहमति प्राप्त करना सम्भव है जिसके कि आधार पर ही राष्ट्रीय एकता कायम की जा सकती है। श्रीमान्, स्वयं अपने अर्थात् ईसाई सम्प्रदाय के सम्बन्ध में मैं जानता हूं कि ऐसे भी अवसर आये हैं जब हमारे देशवासियों ने इस सम्प्रदाय और धर्म को अनुचित रीति से एक ऐसी संस्कृति से सम्बद्ध माना है जो भारतीय नहीं थी और उसे भूल से यूरोपियन तौर-तरीके का अनुयायी समझा। किन्तु इस महान् सभा को मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यह आवश्यक नहीं है और हमेशा ऐसा रहा भी नहीं है और अनेक बार हमारे सम्प्रदाय के अनुयायियों ने चाहे वे किसी दूसरे देश से आये हों अथवा यही के हों, इस देश की सर्वोत्तम परम्पराओं के सर्वथा अनुकूल आचरण किया है। श्रीमान्, इस अधिवेशन की कार्रवाई शुरू होने के दिन बनारस विश्वविद्यालय के सम्मानित वाइस-चांसलर डॉक्टर सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इस देश में सबसे पहले आने वाले अंग्रेज जेजूइट टामस

स्टीवेंस का उल्लेख किया था और कहा था कि उनके बाद भारत में अनेक अंग्रेज व्यापारी तथा विजेता पधारे, और अब हम उस ''आक्रमण'' का अन्त देख रहे हैं। श्रीमान्, मैं इस सभा को विश्वास दिलाता हूं और मुझे निश्चय है कि सर एस. राधाकृष्णन भी जानते हैं, कि उक्त अंग्रेज व्यापारियों तथा विजेताओं का उस 'जेजूइट' से, जो इन लोगों से पहले आया था, कोई सम्बन्ध नहीं था। इसके विपरीत, वह तो एक ऐसे समय में भारत आया था, जब स्वयं अपने देश में उसे सत्कार प्राप्त नहीं था और उत्पीड़न की धमकी देकर उसे वहां से निर्वासित कर दिया गया था। उस समय इस महान् देश ने उसे आतिथ्य प्रदान किया और उसने इस देश को अपना देश बना लिया, यहां की भाषा सीखी और एक ऐसी पुस्तक की रचना की, जिसके सम्बन्ध में मराठी विद्वानों का कहना है कि वह एक प्राचीन ग्रन्थ है, टामस स्टीवेंस का ''पुराण'' है। श्रीमान्, यही वह भावना है, जिससे प्रेरित होकर उक्त धर्म के अनुयायी यहां आना चाहते हैं और इसी भावना से हम, इस देश को समृद्धिशाली व ऐश्वर्यवान बनाने के लिए राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में सम्मिलित होना चाहते हैं।

मुझे इस सभा का समय अधिक न लेना चाहिए, किन्तु एक अन्य विषय के बारे में, जिसके सम्बन्ध में काफी कहा जा चुका है, मैं भी कुछ कहे बिना नहीं रह सकता। पर मुझे आशा है कि इस विषय में मैं कुछ ऐसी बात कह सकूंगा, जो नवीन होगी। जन-सत्ता के विषय में, और जन-सत्ता के सिद्धात के साथ राजतंत्र सिद्धांत का मेल न बैठने की संभावना के विषय में तथा उससे उत्पन्न हो सकने वाली कठिनाइयों और खतरों के विषय में, बहुत-सी बातें कही गई हैं श्रीमान्, जन-सत्ता का यह सिद्धांत कोई नया सिद्धांत नहीं है। यह 19वीं शताब्दी का सिद्धान्त नहीं है। यूरोप की राजनैतिक विचारधारा का इतिहास बताता है कि 16वीं शताब्दी में ही वहां इस सिद्धान्त को लेकर एक संघर्ष उस समय उत्पन्न हुआ था, जब वहां के कुछ राजाओं ने 'शासन के ईश्वरीय अधिकार' का दावा किया था। और इस सभा को यह जानने में दिलचस्पी होगी कि इन राजाओं के विरुद्ध दकियानूसी विचारकों तक ने अर्थात् उन विचारकों तक ने जो राजतन्त्रवादी थे, जनता की सत्ता का ही समर्थन किया था। सेंट राबर्ट बाइलर माइन तथा स्वारेज ने इंग्लैंड के जेम्स प्रथम के विरुद्ध इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, यद्यपि इन लोगों

[रेवरेंड जेरोम डीसूजा]

ने उसकी व्याख्या रूसों से भिन्न रूप में की थी। अपने उत्तरकाल में रूसो इस विचार के प्रवर्त्तक बने थे कि राज्य की शक्ति जनता से, जन-समुदाय के सर्वाधिकारों को संगृहीत एवं एकत्र करके प्राप्त होती है और यह समझ लिया जाता है कि जनता ने स्वयं अपने इन अधिकारों का समर्पण कर दिया है। किन्तु श्रीमान्, राज्य, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के समर्पण से जनित कोई अवांछनीय, पृथक् उत्पत्ति नहीं है। वह तो उस मनुष्य की प्रकृति का प्राकृतिक परिणाम है, जिसे अपने को एक आवश्यक केन्द्रीय अधिकार के साथ, सामाजिक एवं सामुदायिक जीवन में पूर्ण बनाना होता है। जैसा कि सर एस. राधाकृष्णन कह चुके हैं, यह अधिकार नैतिक विधान से प्राप्त होता है और यही वह आधार है, जिस पर व्यक्तियों के तथा राज्य के अधिकार कायम किये जाते हैं। श्रीमान्, कुछ लोग, इस सर्वातिम अधिकार को, उस सर्व शक्तिमान् ईश्वर से उत्पन्न बताना पसन्द करेंगे, जो इस विश्व का और समस्त नैतिक विधान का निर्माता है। श्रीमान्, इस बात पर खेद प्रकट किये बिना मैं नहीं रह सकता कि हमारी इस महत्त्वपूर्ण घोषणा में सर्व शक्तिमान् ईश्वर के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मैं उन कारणों को भी समझता हूं, जिनके वश, इस प्रस्ताव में माननीय निर्माता तथा प्रस्तावक ने, उसमें ऐसी कोई चीज शामिल करना पसंद नहीं किया, जो एक धार्मिक शक्ति के रूप में हो। किन्तु श्रीमान्, अपना भाषण समाप्त करने से पहले आप मुझे इतना कहने की अनुमति तो देंगे ही कि यदि किसी भी प्रकार से, इस महत्त्वपूर्ण भूमिकात्मक घोषणा में सर्वशक्तिमान् ईश्वर का नाम भी सम्मिलित कर लिया गया होता, तो यह बात हर प्रकार हमारे इस विशाल देश की धारणा, विश्वास, भावना तथा उसकी प्राचीन सभ्यता के सर्वथा अनुकूल ही होती। श्रीमान्, यद्यपि यहां इसका उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु मेरी यह धारणा है कि अन्ततोगत्वा 'राज्य' को सर्वशक्तिमान् ईश्वर से ही वह सत्ता एवं समर्थन प्राप्त होता है, जिससे उसमें एक प्रकार की पवित्रता-सी आ जाती है। इससे मेरा मतलब किसी ऐसे सिद्धान्त के पक्ष में बोलने का नहीं है, जिससे 'राज्य' को ईश्वरीय माना जाता है। किन्तु मेरा मतलब यह अवश्य है कि 'राज्य' के प्रजाजनों को, जब वे उस 'राज्य' को स्वीकार कर लें और उसके नागरिक हो जायें, उसका आज्ञा-पालन हृदय से करना चाहिये

और ऐसा समझना चाहिये कि अपने देश की सरकार की शासन-सत्ता स्वीकार करना उनका कर्त्तव्य है। श्रीमान्, हम लोग ईश्वर में विश्वास रखते हैं। हमारा विश्वास है कि अनेक परिवर्तनों से पूर्ण 'इतिहास' का अभिनव आविर्भाव, आज भी किसी दैवी शक्ति का ही विधान है। यद्यपि ईश्वर के पवित्र नाम का उल्लेख यहां नहीं है, किन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि यहां पर हम सब उसकी ही सुरक्षा में और उसके ही ऐश्वर्य से एकत्र हुए हैं और क्योंकि वह ही मनुष्यों के हृदयों को स्पंदित करता है, हम आशा करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि इस गम्भीर एवं भूमिकात्मक घोषणा के साथ हमने जो विचार-विमर्श आरम्भ किया है, वह उसी परमात्मा की कृपा से यथोचित रूप से समाप्त होगा और जिस भूमि के लिए हम यह परिश्रम उठा रहे हैं, वह एक बार फिर नवीन शक्ति, नवीन समृद्धि एवं नवीन सुखसम्पन्नता के साथ उन्नति करेगी।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं। हिंदुस्तान का आज हम विधान बनाने जा रहे हैं और इस अवसर पर मुझे इस बात की खुशी है कि जिस देश का हम विधान बनाना चाहते थे, हिंदुस्तान की जनता अपना खुद विधान बनाना चाहती थी, वह विधान बनाने का मौका आज हमारे सामने आया है। हिन्दुस्तान का जब विधान बनने जा रहा है, उसे हम लोगों को अपनी देशी भाषा में ही, अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही बनाना चाहिए। यह भी हिंदुस्तानियों का एक फर्ज हो जाता है और इसी फर्ज को लेकर मैं अपना भाषण हिन्दुस्तानी में कर रहा हूं। मैं उस जाति में से आता हूं जो जाति इस हिंदुस्तान में कई हजार सालों से पिछड़ी और दबी हुई है। मैं एक हरिजन हूं और ऐसे हरिजनों की आवाज, और नौ करोड़ हरिजनों की आवाज, जो हिन्दुस्तान में हैं, उनकी आवाज आपके सामने रखूंगा। हरिजन समाज इस प्रस्ताव को बहुत आनन्द के साथ स्वीकार कर रहा है। इसका खास कारण यह है कि जितने भी अल्पसंख्यक लोग हैं, हिंदुस्तान के अन्दर उन सबका संरक्षण इस प्रस्ताव में बतलाया गया है। इस प्रस्ताव के खिलाफ और डॉ. जयकर के अमेन्डमेंट पर भाषण करते हुए मेरे मित्र डॉक्टर अम्बेडकर ने यह कहा कि हिंदुस्तान की सेन्ट्रल गवर्नमेंट 'स्ट्रांग' चाहिए और हिंदुस्तान अखंड चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के इस भाषण पर मुझे बड़ी खुशी

[श्री एच.जे. खांडेकर]

हुई कि इंग्लैंड जाने के बाद जब इंग्लैंड में वह खुश न हो सके और उनको संतोष न हो सका, तो उसके बाद डॉ. अम्बेडकर साहब ने यह बयान किया, और मुझे उम्मीद है कि इस बयान पर वह कायम रहेंगे। परमात्मा अगर उन्हें और थोड़ी सद्बुद्धि दे दें तो मुझे यह भी उम्मीद है कि वह सेपरेट इलेक्टोरेट की डिमान्ड छोड़ देंगे और साथ-साथ जो आज तक वह कहते हैं कि 'मैं हिन्दू नहीं हूं' उसको भी छोड़ देंगे। मगर परमात्मा उन्हें सद्बुद्धि दे और मुझे उम्मीद है कि परमात्मा उन्हें जरूर बुद्धि देगा।

हरिजनों की दशा अगर मैं बयान करना चाहूं, आप लोगों के सामने, तो आपके हृदय पिघल जायेंगे। हरिजनों के ऊपर आज तक अनंत अत्याचार और जुल्म हुए हैं और हो रहे हैं। मगर हमने बड़े धैर्य के साथ उन जुल्मों को सह लिया और यहां तक कि हमने कभी भी अपने धैर्य को छोड़ने की नहीं सोची। हम हिंदू हैं, हिंदू ही रहेंगे और हिंदू रहते हुए ही हम अपने हक सम्पादन करेंगे, हम यह कभी नहीं कहेंगे कि हम हिंदू नहीं हैं। हम जरूर हिंदू हैं और हिंदू रहते हुए और हिंदुओं के साथ लड़कर अपने अधिकार प्राप्त करेंगे। हमें मालूम है नोआखाली के अन्दर और ईस्ट बंगाल के अन्दर जो अत्याचार हुए हैं, उन अत्याचारों में 90 फीसदी हरिजनों पर जुल्म हुए। उनके मकान जलाए गए, उनके बाल-बच्चे तबाह कर दिए गए, उनकी स्त्रियों पर, लड़कों पर अत्याचार किए गए। और इतना ही नहीं, कई हजार हरिजनों को धर्मान्तर करना पड़ा। यह सारी बातें होते हुए भी आज हम यह कभी नहीं सहन कर सकते कि किसी कौम को अगर उसकी संख्या के अनुसार ज्यादा अधिकार मिलें, याने वेटेज मिले, तो हरिजन भी अपनी संख्या के अनुसार वेटेज लेने के लिए लड़ेंगे। आज जो पिछड़ी हुई जाति है, तबाह जाति है, उसका क्या हुआ? पूना पैक्ट की आपको याद दिलाता हूं, मैं अपने प्रान्त की मिसाल आपके सामने रखता हूं। जहां सी.पी. के अन्दर हमारी तादाद 25 फीसदी है और संख्या के अनुसार हमें उस जगह 28 सीटें मिलनी चाहिए थीं, मगर वहां पूना पैक्ट को देखते हुए हमें सिर्फ 20 जगहें मिली हैं। हमारी 8 जगहें कहां गईं। हमारे प्रान्त में 4 फीसदी मुसलमान भाई हैं। संख्या के अनुसार उन्हें वहां सिर्फ छः जगह मिलनी चाहिए थीं। मगर दुख की बात है कि हरिजनों की 8 जगहें छीनकर मुसलमान भाइयों को दी गईं। और उन्हें

छः की जगह 14 जगहें मिलीं, इस तरह का अन्याय अब हरिजन नहीं सहन कर सकते। उनकी संख्या के अनुसार उन्हें अधिकार मिलने चाहिएं। आपके सेंशस में भले ही उनकी तादाद 4 या पांच करोड़ हो मगर मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हमारी पोपुलेशन कभी मुसलमानों से कम नहीं है। हम नौ करोड़ हैं और उसी के अनुसार हिस्सा हमें मिलना चाहिए। इसके लिए हमारी जाति कोशिश करेगी।

इस रेजोल्यूशन में एक बात की कमी है। और अगर प्रस्तावक महोदय उसको कबूल करें तो आज भी उसे बदल सकते हैं। इस प्रस्ताव में हर एक माइनोरिटी के अधिकार को सेफगार्ड करने की बात लिखी है। मगर दुख की बात है कि हिंदुस्तान के अन्दर एक करोड़ ऐसे लोग हैं जिन्हें जन्म लेते ही बिना किसी जुल्म के जरायमपेशा बना दिया जाता है और ऐसे करीबन कई लाख लोग हैं हिंदुस्तान के अन्दर जिनकी औरतों, आदमी और बच्चों को इस कानून के मातहत जरायमपेशा बना दिया गया। उन लोगों के अधिकार को प्राप्त करने के लिए उन्होंने इन पर जुल्म लगाया हुआ है। चाहे वह चोर हों या न हों, लेकिन जिस दिन से वह जन्मते हैं, उस दिन से उन्हें चोर बना दिया जाता है। इस प्रस्ताव में इस कानून के हटाने के लिए जरूर कुछ होना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि प्रस्तावक महोदय इस बात को महसूस करेंगे और अपने प्रस्ताव में इस कौम को सेफगार्ड करने के लिए जरूर कुछ जगहें रखेंगे।

जो ग्रुपिंग हुई है, और कांग्रेस ने उस ग्रुपिंग को मान लेने का प्रस्ताव पास किया है। हालांकि मैं कांग्रेसमैन हूं लेकिन मुझे इस प्रस्ताव से डर मालूम होता है और वह यह कि बी और सी ग्रुप के अन्दर जो हमारे डिप्रेस्ड क्लासेज के लोग हैं उनका क्या होगा; इस पर मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूं, तबसे सोच रहा हूं जबसे कांग्रेस ने इसे मंजूर किया है।

चाहे इंडायरेक्टली आज बंगाल में पाकिस्तान न हो, फिर भी हरिजन के ऊपर ईस्ट बंगाल में क्या जुल्म हुए। यह जो लोग वहां से देखकर आए हैं उन लोगों को खुद आश्चर्य मालूम हुआ। यहां जो हम अखबार पढ़ते हैं उससे मालूम होता है कि 90 फीसदी हरिजनों के ऊपर अत्याचार हुआ। अगर ग्रुपिंग मानने के बाद अप्रत्यक्ष पाकिस्तान हो गया तो मैं समझता हूं कि एक भी अछूत जहां-जहां इस प्रकार का पाकिस्तान हो गया, जिन्दा नहीं रह सकता। जहां-जहां पाकिस्तान कायम

[श्री एच.जे. खांडेकर]

करने का स्वप्न है वहां-वहां हरिजनों को जबरदस्ती धर्मान्तर करना ही होगा या तो मरना होगा। वह गरीब हैं और किसी भी प्रकार से उन पर अत्याचार हो सकता है और लोग आज भी कर रहे हैं। हर कौम आज अपनी पोलिटिकल डिमांड्स के लिए अपनी ताकत बढ़ा रही है। ऐसा कोई दिन आ जायेगा इस ग्रुपिंग से कि हमारी ताकत घट जायेगी और बंगाल की दूसरी जातियों की संख्या बढ़ जायेगी। और उनकी ताकत बढ़ने से एक भी हरिजन इन प्रान्तों में नहीं दिखलाई देगा। इसलिए इस पर विचार करते समय इन प्रान्तों में जहां हरिजनों की यह हालत है वहां उन्हें विशेष अधिकार देना होगा, और इसीलिए डॉक्टर अम्बेडकर ने इस भय को देखते हुए यह कहा कि सेंट्रल गवर्नमेंट बहुत स्ट्रांग होनी चाहिए। और प्रान्तीय गवर्नमेंट में संख्या के अनुसार सीटें न दी गईं तो जो डर आज हमें बंगाल के बारे में है, जो मैंने खुद देखा है, हमारी कौम ने महसूस किया है कि वह डर कायम रहेगा। सेंट्रल गवर्नमेंट में हमें पूरी सीटें दी जायें तो यह डर खत्म हो जावे। मैं इस प्रस्ताव का खूब हृदय से समर्थन करता हूं और उम्मीद करता हूं कि हम लोग जो पिछड़ी कौम के हैं, हजारों सालों से जो हमें अधिकार-वंचित किया गया है, उनको प्राप्त कराने का सारे सदस्य प्रयत्न करेंगे। लेकिन दिक्कत यह है कि आज तक मैंने देखा कि जहां-जहां हरिजनों की सीटें देने का सवाल आया वहां-वहां एक-एक दो-दो जगहें दी जाती हैं। लोकल बाडीज में कई प्रांतों में यह बात हो रही है। कई बार डिमांड किया कि हमारी संख्या के अनुसार जगह दी जायें। लेकिन कानून बनाये गये हैं कि हरिजन चुन कर न आयें तो एक ही सिलेक्ट किया जाये और सिलेक्ट न हो सकें तो एक ही नौमिनेट किया जाये। जहां हरिजनों की संख्या आधे से भी ज्यादा होती है वहां भी सिर्फ एक आदमी सिलेक्ट किया जाता है या एक ही आदमी नौमिनेट किया जाता है। इससे मालूम होता है कि आज भी हमारी ओर जनता का ध्यान आकर्षित नहीं है। इसलिए यह प्रयत्न करना चाहिए और जब-जब यह मौका आए, तो हमारी संख्या के अनुसार हमें हर जगह प्रतिनिधित्व दिया जाये। तभी हम समझेंगे कि हमारे लिए आप कुछ कर रहे हैं। अगर आप एक-एक दो-दो में खुश करना चाहते हैं तो वह बात अब नहीं चलेगी। हरिजन समाज अब जागृत हो गया है और उसके अधिकार क्या हैं वह समझ गया और वह सारे प्राप्त करने के लिए हरचन्द कोशिश और अपनी

ताकत लगा देंगे। इन शब्दों के साथ मैं उम्मीद करता हूं कि आप लोग हमारे अधिकारों को पूरी-पूरी तरह से ख्याल में रखेंगे और हमें इस स्थिति में न रखेंगे जिसमें हम अब तक रहे। इस आशा को लेकर मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

श्री आर.वी. धुलेकर (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जिस प्रस्ताव को श्रीमान पं. जवाहरलाल नेहरू जी ने उपस्थित किया है और जिसका अनुमोदन हो चुका है और जिसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार के व्याख्यान यहां पर हो चुके हैं, जिस प्रस्ताव के अंगों पर अनेक प्रकार की आपत्तियां प्रकट की गई हैं, उनके सम्बन्ध में विचार करते हुए मैं इस प्रस्ताव के पक्ष में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं।

महात्मा गांधी ने मानव जीवन-तत्त्वों को दो शब्दों में रख दिया है, सत्य और अहिंसा। जो न्याय है, जो उचित है, जो धारण करने योग्य है अर्थात् धर्म है, वही सत्य है। जो दूसरों को हानि नहीं पहुंचाता है, दूसरों के धन, वित्त और स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं करता; जो दूसरों के जीवन की, सामाजिक जीवन की रक्षा करता है वही सत्य है, वही अहिंसा है।

ये ही तत्त्व वेदों और उपनिषदों के सार हैं। ये ही समस्त धर्मों मत-मतान्तरों और शास्त्रों के सार हैं। ये ही कांग्रेस के ध्येय हैं और इन पर ही यह प्रस्ताव खड़ा है। भारतवर्ष की भावनाओं का, उसकी आकांक्षाओं का, उसकी सदिच्छाओं का, उसके उद्देश्यों का, यह प्रस्ताव मूर्त्तिमान व्यक्त स्वरूप है। जो देश इस समय अंग्रेजी साम्राज्य के अंतर्गत परतन्त्रता में जकड़ा हुआ है वह स्वतन्त्र होकर क्या करना चाहता है और संसार में कैसे रहना चाहता है, यह प्रस्ताव उस स्वरूप का घोतक है। सारांश इस प्रस्ताव का इस प्रकार है:

''इस विधान परिषद् ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया है कि भारत को पूर्णरूपेण एक शक्ति-सम्पन्न प्रजातन्त्र स्वशासित-राष्ट्र घोषित करे और इसी लक्ष्य को सामने रखकर भविष्य के लिए विधान बनाये।

''भारतवर्ष की सीमाओं के भीतर जितने प्रान्त अथवा प्रदेश हैं चाहे वे अंग्रेजी राज्य में हों, चाहे वे देशी नरेशों के आधीन हों, चाहे वे अन्य विदेशी शक्तियों के आधीन हों, सभी प्रदेश स्वेच्छापूर्वक एक भारतीय संघ का निर्माण करेंगे।

''ऐसे प्रदेशों अथवा प्रान्तों को चाहे जिनकी सीमायें वर्तमान हों अथवा विधान द्वारा बदली जायें, आन्तरिक शासन में पूर्ण स्वतंत्रता होगी और जो अधिकार भारतीय

[श्री आर.वी. धुलेकर]

संघ को स्वयं प्राप्त होने चाहिएं अथवा विधान द्वारा प्रान्तों तथा प्रदेशों ने दे दिये हों, ऐसे अधिकारों को छोड़कर सभी अधिकार प्रान्तों और प्रदेशों को स्वयं प्राप्त होंगे। इन मौलिक अधिकारों की हम मौलिक शेषाधिकार अथवा अंग्रेजी भाषा में रेजिड्यूएरी पावर्स कहते हैं।

''सर्वशक्ति-सम्पन्न स्वतन्त्र भारत तथा उसके घटक-अंगों और शासन-सूत्रों की शासन-शक्ति का मूलाधार भारतीय जन-समूह है।

''ऐसे राष्ट्रों में समस्त भारतीयों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा सामाजिक स्थान की और उन्नति के अवसर की समानता तथा विचार, धर्म, मत, उद्योग, व्यवहार और कार्यशैली सभी की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, जो नियमबद्ध और नीति युक्त होगी।

''इन समस्त मौलिक तत्त्वों के संयोग से भारतीय प्रजातन्त्र राष्ट्र की भूमि अर्थात् हमारा हिंदुस्तान तथा उसके समस्त अधिकार सुरक्षित रखे जायेंगे। भूमि, समुद्र तथा वायुमंडल के समस्त अधिकार जो न्यायपूर्वक और सभ्य राष्ट्रों के नियमों द्वारा भारत को प्राप्त होने चाहिए सदा के लिए अक्षुण्ण और सुरक्षित रखे जायेंगे।

''इन्हीं मौलिक तत्त्वों और सिद्धान्तों द्वारा, जिन पर हमारी विधान-परिषद् भारतीय प्रजातन्त्र रूपी भवन की नींव रख रही है, यह प्राचीन राष्ट्र भूमंडल पर अपना अधिकारयुक्त आदरणीय स्थान प्राप्त करेगा और समस्त जगत में शान्ति तथा मानव जाति को सुख प्राप्त कराने के कार्य में पूर्ण और स्वेच्छा-युक्त योग देगा।''

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): श्रीमान्, एक व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्न है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या किसी माननीय सदस्य को हस्तलिपि से कुछ पढ़ने का अधिकार प्राप्त है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि वे पढ़ रहे हैं। उन्होंने बहुत सी बातें लिख रखी हैं। (*हंसी*)

श्री आर.वी. धुलेकर: मैं बराबर ऐसे बोल सकता हूं जैसे कि मैं पढ़ रहा हूं।

प्रेसीडेंट महोदय, कोई भी विचारवान मनुष्य इस प्रस्ताव के किसी भी अंग पर आपत्ति नहीं उठा सकता। समस्त भारतीयों को उनके स्वत्वों की रक्षा का वचन दिया गया है। अल्पसंख्यक समूहों के लिए विशेष अधिकारों का वचन दिया गया है। पिछड़ी हुई और पददलित जातियों पर जो अभी तक देशवासियों ने और विदेशियों

ने अन्याय किया है उसको पूर्णरूप से हटाने तथा उनके लिए उन्नति के अवसरों को प्राप्त करा देने का वचन प्रस्ताव ने दिया है।

देशी राज्यों के लिए भी यह कह दिया गया है कि वे भी आन्तरिक प्रबन्ध में स्वतन्त्र रहेंगे और सब प्रकार के न्यायोचित अधिकार उनके सुरक्षित रहेंगे। हां, उनका वर्तमान अन्यायपूर्ण एकतंत्री शासन न चलेगा। क्योंकि एकतन्त्री अन्याय और प्रजा का हित दोनों परस्पर विरोधी हैं। मेरा विश्वास है कि कोई भी देशी नरेश अपनी प्रजा के मौलिक अधिकार अब आगे दबाये रखने का न तो दावा ही पेश करेगा और न साहस ही करेगा। न तो वहां की जनता इस प्रकार का अनुत्तरदायी शासन चलने देगी और न यह विधान-परिषद् भी किसी प्रकार की सहायता ऐसे अनुचित कार्य में कर सकती है।

एक और आपत्ति उठाई गई है; ऐसे प्रस्ताव की क्या आवश्यकता है? और यदि ऐसी आवश्यकता हो भी तो जब तक देशी राज्यों के प्रतिनिधि नहीं आये हैं तब तक ऐसा प्रस्ताव न उपस्थित करना चाहिए। कारण कि देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को इस पर विचार करने का अवसर नहीं मिलता है। देशी राज्यों की अनुपस्थिति की आपत्ति बिल्कुल निराधार है। यह स्पष्ट है कि कैबिनेट मिशन के 16 मई सन् 1946 के बयान की धारा 19(2) के अनुसार प्रारम्भिक काल में देशी राज्यों के प्रतिनिधि आ ही नहीं सकते। परस्पर बातचीत व समझौता करने के लिए प्रारम्भ में देशी राज्य की (शिष्ट-समिति) निगोशिएटिंग कमेटी से ही हमें बात करनी होगी। इस विधान-परिषद् का बहुत-सा काम हो जाने के पश्चात् अन्तिम अवस्था में पहुंच कर कहीं देशी राज्यों के प्रतिनिधियों का कार्य विधान-परिषद् में प्रारम्भ होता है। तब तक अपने उद्देश्यों को देशी राज्यों की जानकारी के लिए तथा उनकी प्रजा की जानकारी के लिए तथा अन्य सम्बन्धित मनुष्यों तथा समूह की जानकारी के लिए प्रकट न करना बुद्धिमत्ता नहीं है। ऐसा न करने से अनेक प्रकार के कुविचार और शंकाएं उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है। हमारे सिद्धांत हमारे मूलाधार रूपी तत्त्व जगत् के सामने इस प्रस्ताव द्वारा रख दिए गए हैं। हर व्यक्ति इसे समझे, तौल ले, फिर हमारा साथ दे।

एक यह भी आपत्ति उठायी गई है कि मुस्लिम लीग के सदस्य यहां उपस्थित नहीं हैं, इसलिए यह प्रस्ताव अभी न लाया जावे। प्रथम यह आपत्ति निरर्थक है।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

जब मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन के बयान के आधार पर चुनाव में भाग लिया और नियमों को मानकर चुनाव भी कर लिया तो उनके प्रतिनिधियों का सम्मिलित न होना अनुचित है। मुसलमानों की जनसंख्या के आधार पर मुसलमानों ही द्वारा प्रतिनिधियों के चुने जाने का अधिकार उन्हें दिया गया। ऐसी दशा में उनकी अनुपस्थिति का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। विधान-परिषद् के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि किसी सदस्य को उपस्थित होने पर बाध्य करे। यदि वह नहीं आता है तो वह अपने अधिकारों से स्वयं वंचित रहता है। अन्य सदस्यों का कोई अपराध नहीं है। इसके अतिरिक्त मतदाताओं को भी हानि पहुंचाता है।

द्वितीय यह कि 6 दिसम्बर सन् 1946 ई. के ब्रिटिश मन्त्रिमंडल में बयान के बाद तो रही-सही आपत्ति भी नहीं रह गयी। कांग्रेस ने उक्त 6 दिसम्बर वाले बयान को प्रस्ताव द्वारा मान लिया और मुस्लिम लीग को अवसर दिया कि वह अपने प्रतिनिधियों को विधान-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए आज्ञा दे। विधान-परिषद् की प्रारम्भिक बैठक वर्तमान प्रस्ताव सहित लगभग एक मास के लिए स्थगित भी कर दी गयी। हमें दु:ख है कि राष्ट्रीय महासभा ने जो सद्भावना तथा मित्रता का हाथ बढ़ाया उसका आदर मुस्लिम लीग ने नहीं किया। हो सकता है कि मुस्लिम लीग के नेताओं ने अपना हाथ भी बढ़ाने का निश्चय कर लिया हो और अंतिम निर्णय करने के लिए उसे काफी समय न मिला हो। हम सब भी विश्वास करते हैं कि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि शीघ्र ही विधान-परिषद् में अपना योग्य स्थान लेंगे और अपने राष्ट्र को स्वतन्त्र, शक्तिमान और सुसम्पन्न बनाने में सहायता करेंगे।

भारतीय स्वयं विभाजित हैं, वे एक नहीं हो सकते। ऐसी निरर्थक कालिमा लगाने का अवसर शत्रुओं को काफी दिया जा चुका है। अब भी समय है कि हम उसे धो डालें। मुस्लिम लीगी भाइयों से यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है।

इसी सिलसिले में एक बड़ा ही कुत्सित अन्यायपूर्ण आक्षेप किन्हीं स्वार्थी अंग्रेजों द्वारा किया जा रहा है। उनमें ऐसे प्रसिद्ध राजनैतिक व्यक्ति भी हैं जैसे, लार्ड साइमन और मि. चर्चिल। वे कहते हैं कि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में विधान-परिषद् एक ''दुमकट जीव'' (ट्रंकेटेड बाडी) है। ऐसी सभा के निर्णयों

का क्या मूल्य हो सकता है। इसका बनाया हुआ विधान ब्रिटिश सरकार कदापि न मानेगी और न कार्यान्वित ही करेगी। इस प्रकार के आक्षेप में निम्नतर और क्षुद्र कौन-सा आक्षेप हो सकता है! सभ्यता के परे तो है ही, बुद्धिमत्ता तथा राजनीति के तत्त्वों के भी विरुद्ध है। इसी श्रेणी के राजनैतिक मूर्ख पंडितों ने बुद्धि और शक्ति से कमाये हुए बड़े-बड़े साम्राज्य और स्वतन्त्र देश रसातल को पहुँचा दिए। हमारे देखते-देखते रूसी जारशाही और हिटलर, मुसोलिनी और मेकाडो की तानाशाही डूब गयी। ब्रिटिश साम्राज्यशाही का बेड़ा भी धीरे-धीरे अन्याय रूपी समुद्र में अब आन्दोलन रूपी ज्वारभाटे के थपेड़ों से नीचे बैठता जाता है। साम्राज्य तो डूबने से बच नहीं सकता। जर्मनी, जापान और इटली के इतिहास से कुछ सीखकर इंग्लैंड के राजनैतिक कर्णधार मि. एटली आदि यदि इंग्लैंड देश को, इंग्लैंड की जनता को, बचा लें तो बहुत अच्छा। सलाह देना हमारा काम है, आगे सुनने वाला सुने या न सुने।

मानवी इतिहास स्वयं लेखक है। उसकी लेखनी बिनचूक लिखती रहती है। निठुर सत्य भी लिखती है। बड़े और छोटे का मुंह नहीं देखती। महाभारत के लेखक व्यास ने अपनी निठुर लेखनी द्वारा जीवन में केवल एक बार असत्य बोलने के लिए, वह भी मिश्रित ''नरो वा कुंजरो वा'' के लिये सत्यवादी युधिष्ठिर को सदैव के लिए मिथ्यावादियों की पंक्ति में रखकर नर्क का भोग करा दिया।

ब्रिटेन के सामने इस समय भारत के साथ 40 करोड़ मनुष्यों के साथ न्याय बरतने का अवसर है। संधि हाथ से न जाने देना उसके हाथ में है, नहीं तो, 'का पछिताये होत है, जब चिड़ियां चुग गई खेत'।

प्रस्ताव के उस अंग को ध्यान में रखकर जिसमें अल्पसंख्यक समूहों और पिछड़ी हुई तथा पद-दलित जातियों के लिए विशेष सुरक्षा पर ध्यान दिया गया है, मैं दो-चार शब्द उनके प्रतिनिधियों से कहता हूं।

सुरक्षाधिकार, सेफगाड्र्स, का प्रश्न तभी उठता है जब अन्याय का भय हो। यदि ऐसा भय न हो तो कोई भी मनुष्य विशेष अधिकार नहीं चाहता। इतिहास के पन्ने उलटिये। आप स्पष्ट पायेंगे कि कुछ असमानतायें ऐसी हैं जो समाज ने स्वयं स्वार्थवश अथवा मूर्खतावश उत्पन्न कर दी हैं जैसे, अस्पृश्यता। समाज के किसी बड़े अंग को अछूत बना देना और उसके मानवाधिकार छीन लेना कदापि क्षम्य नहीं है। उन अधिकारों को मानकर लौटा देने से ही अपराध की भरपायी

[श्री आर.वी. धुलेकर]

हो सकती है अन्यथा नहीं। हम ऐसा करने पर कटिबद्ध हैं। किन्तु जिस बिन्दु की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहता हूं वह यह है कि हमारे समाज ने जो असमानतायें, नीच ऊंच की मर्यादायें बनायीं उसके लिए तो हम अपराधी हैं किन्तु विदेशियों ने यहां आकर अपनी राजसत्ता को कायम करने तथा उसे दृढ़ बनाने के लिए जिन असमानताओं को बढ़ा दिया है, उनके द्वारा परस्पर द्वेष और दुर्भावनाओं को उत्पन्न किया, नयी-नयी गुत्थियां बना दीं, किसी समस्या को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि उन्हें और गहरा बना दिया। ब्राह्मण-अब्राह्मण को, छूत-अछूत को, हिन्दू-मुसलमान को, हिन्दू-सिख को, आदिवासी-नवीनवासी को, कहां तक कहूं; स्त्री जाति और पुरुष जाति को, भाई-भाई को अंग्रेजों ने अपनी दुरंगी कहूं कि नौरंगी, कुटिल चालों से अलग-अलग कर दिया। क्या उनका भी अपराध हम अपने सर पर ही थोपना चाहते हैं? अपराधों का भार ही लेना हो तो मैं अकेला इस भार को अपने सर पर रख लूं। किन्तु उस भार को सर पर रखकर उसी व्यवस्था को अथवा सुरक्षा के विशेष अधिकारों (स्पेशल सेफगाड्र्स) को अब भी आगे कायम रखना और चलाना अनुचित है। मैं कहना चहता हूं और जरा मोटे शब्दों में कहना चाहता हूं कि कृपा कर जागिए। जिस सुरक्षा के विशेष अधिकारों (स्पेशल सेफगाड्र्स) की आड़ में अंग्रेज बहेलिया शिकार खेलता था, जिन विशेषाधिकारों की सुगंध सुंघाकर अंग्रेज ने आपको महानिद्रा के वश में कर लिया था उसी सुगंधि युक्त विष को अब न सूंघिये। यह विधान आप स्वयं बना रहे हैं। अब भेदाभेद मिटा दिया जायेगा। न कोई बहकाने वाला है और न किसी को बहकाने की आवश्यकता है। विशेषाधिकारों से असमानता नहीं मिट सकती। गड्ढों और टीलों को सुरक्षित रखकर समतल कैसे बनाया जा सकता है? आइये, हम सब मिलकर निर्भय होकर असमानता हटायें, सबको समानाधिकार प्राप्त करायें। ध्यान रखिए, केवल प्रतिनिधियों की न्यूनाधिक संख्या से सुरक्षा (सेफ्टी) नहीं मिल सकती। संख्या की खींचातानी तो खाई खोदती है, भरती नहीं।

सन् 1916 ई. में राष्ट्रीय महासभा ने मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन मान लिया और विशेष प्रतिनिधि संख्या भी दी। 30 वर्ष में उसने हिन्दू मुसलमानों को गृहयुद्ध (सिविल वार) तथा देश के बंटवारे (पारटीशन) तक पहुंचा दिया। भाई

को भाई के खून का प्यासा बना दिया। जो चाल लार्ड मिंटो ने सन् 1906 में चली थी वह काम कर गयी।

कुछ सज्जन कहते हैं कि विधान-परिषद् स्वतंत्र और शक्ति-सम्पन्न सभा नहीं है। वह तो अंग्रेजों के द्वारा निर्माण किया हुआ जंतु (क्रीचर) है। इसका जीवन ही निरर्थक है। फिर इसके द्वारा निर्मित्त विधान का क्या मूल्य है?

ऐसे सज्जनों को मैं बुद्धिहीन तो कह नहीं सकता। ऐसी धृष्टता मैं न करूंगा। किन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि भारतीय इतिहास से वे अनभिज्ञ अवश्य हैं। अधिक दूर न जाकर संक्षेप में इतना कह देना पर्याप्त समझता हूं कि 1000 वर्ष पूर्व, जब कि किन्हीं कारणों से भारतीय समाज विश्रृंखल हो गया था और विदेशियों के आक्रमण को न सहकर उसके आधीन हो गया था, उसी समय से स्वाधीन होने की अग्नि निरन्तर भारतीयों के हृदय में जलती आ रही है। कभी बुझी नहीं। एक ओर उस अग्नि का स्वरूप साधु-संतों की परम्परा में प्रगट होता रहा है। स्वामी रामदास, गोस्वामी तुलसीदास, गुरुनानक, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ आदि प्रभृति इस परम्परा के प्रतिनिधि हैं। दूसरी ओर शिवाजी, गुरू गोविदसिंह, राणा प्रताप, झांसी की वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई, राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, पं. मोतीलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस प्रभृति इस अग्नि के राजनैतिक स्वरूप में प्रगट हुए। महात्मा गांधी और खान अब्दुल गफ्फार खां तो संत भी हैं और राजनीतिज्ञ भी हैं। बाबर, हुमायूं, अकबर तथा अन्य जिन-जिन विदेशी शासकों ने अपने को भारतीय मानने का जितने-जितने अंश में प्रयत्न किया उसी-उसी मात्रा में देशवासियों ने उन्हें अपनाया। अंग्रेजी शासन काल का भी यही इतिहास है। कोई भी दिन आज तक ऐसा नहीं मिल सकता जिस दिन कोई भी भारतीय अंग्रेजों के जेल में इस स्वतन्त्रता की चाह के कारण यातनाएं न सह रहा हो। स्वतन्त्रता का युद्ध इन 200 वर्षों में जारी रहा है। कांग्रेस के 60 वर्ष का इतिहास बलिदानों का इतिहास है। खुदीराम बोस, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, तथा अन्य सहस्रों वीरों ने अपना बलिदान चढ़ा दिया है। लाखों कांग्रेस-जनों ने अदम्य साहस और धैर्य का परिचय दिया है। बलिदानों के कारण इंग्लैंड धीरे-धीरे अपनी शक्ति मजबूर होकर छोड़ता जाता है। सन् 1899, 1909, 1919 और सन् 1934 के कानून सिद्ध करते हैं कि शनैःशनैः भारतवासी इंग्लैंड के हाथ से शक्ति छीनने जाते हैं सन् 1940-42 के राष्ट्रीय आन्दोलन ने तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

[श्री आर.वी. धुलेकर]

ने, जो महायुद्ध से पैदा हो गयी, इंग्लैंड को मजबूर कर दिया कि वह भारत को अब छोड़ दे। यह विधान-परिषद् इंग्लैंड के हाथों में से छीनी हुई शक्ति है। यह न तो दान है और न भेंट है। इंग्लैंड के हाथ इतने सबल नहीं है कि वह इसे वापिस ले सके। हमारा बनाया हुआ विधान इंग्लैंड को मानना पड़ेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अमेरिका में युनाइटेड नेशन्स की सभा में जो अभी हाल में भारत की जीत हुई है, वह सिद्ध करती है कि भारत अब ब्रिटिश साम्राज्य का घरेलू मामला (फैमिली कंसर्न) नहीं है। भारत स्वयं बलवान और स्वतंत्र राष्ट्र के पद को प्राप्त कर चुका है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने जो कार्य इस सम्बन्ध में किया है। उसकी प्रशंसा के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं है। भारत का माथा उन्होंने ऊंचा किया है और उनकी अमरकीर्ति भारत के इतिहास में सदैव सुवर्ण अक्षरों में चमकती रहेगी।

अध्यक्ष महोदय, अब मेरा वक्तव्य समाप्ति पर है, मैं अधिक समय नहीं लूंगा। दो बातें कह कर समाप्त कर दूंगा।

पहली बात तो यह है कि समस्त भारतवासियों को और विशेष कर मुसलमान, सिख, दलित जातियों तथा अन्य अल्पसंख्यकों को निर्भय हो जाना चाहिए। प्रात:स्मरणीय महात्मा गांधी, पूज्य खान अब्दुलगफ्फारखां, पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार वल्लभभाई पटेल सरीखे नेताओं के हाथों में सबके अधिकार सुरक्षित हैं। इस प्रस्ताव द्वारा यह विधान-परिषद् घोषणा करती है और वचन देती है कि सबके साथ समान न्याययुक्त व्यवहार होगा, किसी पर कोई अन्याय न होगा।

ऐसी घोषणा की आवश्यकता अन्य राष्ट्रों को भी प्रतीत हुई। आइरिश रिपब्लिक की 21 जनवरी सन् 1919 ई. की घोषणा को सदस्य देखें।

विधान-परिषद् के सदस्यों से मैं कहना चाहता हूं कि हम हिन्दुस्तानी स्वतन्त्र होने के लिए हिमालय पर्वत की नाईं दृढ़, ऊंचे और शक्ति-सम्पन्न हैं। इंग्लैंड भी मेरे इन शब्दों को याद रखे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***डॉ. एच.सी. मुखर्जी** (बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जहां तक मेरे अपने सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, मैंने हमेशा ''छोटे बालकों से मिलना चाहिए उनकी बात न सुनी जानी चाहिए'' अंग्रेजी की कहावत के सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करने

का प्रयत्न किया है। इस विशेष अवसर पर मैं पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव के समर्थन में कुछ कहने के लिए विवश हूं, क्योंकि दुनिया को मालूम होना चाहिए कि इस प्रस्ताव को हिन्दुस्तान के महान दलों का ही नहीं बल्कि छोटे अल्पसंख्यक समुदायों और लघु धार्मिक व सामाजिक समूहों का भी, जिनमें से एक का सदस्य मैं स्वयं हूं, समर्थन प्राप्त है। यही कारण है कि मैं भाषण देने के लिए खड़ा हुआ हूं। प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो भी कुछ कहा जा सकता है, वह मुझ से पहले बोलने वाले लोग विस्तार से कह चुके हैं। मेरी अपनी दिलचस्पी प्रस्ताव के पांचवें और छठे पैरों में है। मेरा आकर्षण इन्हीं बातों की ओर है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि अभी तक हमें कांग्रेस से जो नेतृत्व मिला है वह कांग्रेस के पास तभी तक कायम रह सकता है जब तक कि वह इन पैरों में बताये सिद्धान्तों पर चलती रहेगी।

जहां तक दूसरी बातों का सम्बन्ध है, मुझे अभी उनमें दिलचस्पी नहीं है। अभी तो मुझे यह देखकर दु:ख होता है कि हमारे बीच हिन्दुस्तान में कठिनाई पैदा हुई। यहां मैं विभिन्न सम्प्रदायों का नाम नहीं लूंगा, किंतु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अल्पसंख्यक समुदाय चाहे छोटे हों या बड़े—उनकी कठिनाइयां नागरिक व राजनैतिक अधिकारों के उपभोग के सम्बन्ध में है। ये अधिकार मौलिक हैं और उन्हें हरेक सामाजिक व धार्मिक समुदाय पर लागू किया जा सकता है। जहां तक धार्मिक अधिकारों का सम्बन्ध है, हमें उपासना की स्वाधीनता प्राप्त है। आजकल हरेक मजहब लड़ाकू है। वे दिन लद चुके जब ईसाई मिशनरी, मुस्लिम मौलवी या सिख गुरु बिना किसी भय के बहुसंख्यक हिन्दू सम्प्रदाय पर हमले करते थे। आज प्रत्येक सम्प्रदाय लड़ाकू है और उसे दूसरों का धर्म-परिवर्तन करके उन्हें अपने में मिलाने की आजादी है। मेरी समझ में नहीं आता है कि हम लोग—यहां मेरा मतलब ईसाइयों से है—इस सम्बन्ध में अपने प्रचार करने के अधिकारों के विषय में सन्देह क्यों करें।

कांग्रेस राष्ट्रीयता की अग्रदूत रही है और जब तक वह देश की उन्नति का नेतृत्व करती रहेगी तब तक मैं उस पर कोई शक या शुबहा नहीं करूंगा। वह शेष भारत का ही नहीं बल्कि छोटे-से-छोटे सम्प्रदाय का, जिसमें मेरा अपना सम्प्रदाय भी शामिल है, समर्थन प्राप्त करेगी।

***श्री प्रमथरंजन ठाकुर** (बंगाल : जनरल): इस प्रस्ताव पर हम कब तक बहस करते रहेंगे?

***अध्यक्ष:** मैं नहीं जानता। (*हंसी*)

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या कोई सदस्य अब बहस समाप्त करने का प्रस्ताव कर सकता है?

***अध्यक्ष:** अवश्य, कोई भी सदस्य बहस समाप्त करने का प्रस्ताव कर सकता है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किये गये इस प्रस्ताव के समर्थन के लिए मैं खड़ा हुआ हूं। इस प्रस्ताव पर विभिन्न स्वार्थों व विचारधाराओं के अनेक व्यक्ति मत प्रकट कर चुके हैं। मैं तो इसके सिर्फ कुछ ही पहलुओं पर और वह भी थोड़े से शब्दों में विचार प्रकट करूंगा।

पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि इस अवसर पर इस प्रस्ताव की आवश्यकता क्यों पड़ी। इस प्रश्न का यही उत्तर है कि हमारा कार्य इतना महान् और पेचीदा है कि अभी इस प्रस्ताव को पास करना आवश्यक हो गया है। श्रीमान्, आइये देखें कि हमें क्या करना है। हमारे कंधों पर भारत की लगभग 40 करोड़ जनता के लिए, जो सारे संसार की जनसंख्या की पांचवां भाग भी है, विधान बनाने की महान् जिम्मेदारी है। इतना ही नहीं, यह 40 करोड़ जनता धार्मिक दृष्टि से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिख व अन्य सम्प्रदायों व उप-सम्प्रदायों में बंटी हुई है। भारत की लगभग तिहाई भूमि में रियासतें हैं। ये रियासतें आधुनिक समय के प्रतिकूल हैं और मुझे बताया गया है कि उनकी संख्या लगभग 516 है। उनकी आर्थिक स्थिति भी बिल्कुल विभिन्न और एक दूसरे के विपरीत है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उनमें से कुछ की वार्षिक आय 100 रुपये से भी कम है। जहां तक शासन का सम्बन्ध है, इनमें से कुछ में स्वेच्छाचारितापूर्ण व वैयक्तिक शासन भी है। अन्य रियासतों में हमें वैध शासन का प्रयत्न दिखाई देता है। इसके अलावा, ये 40 करोड़ मनुष्य उन्नति की विभिन्न अवस्थाओं को पहुंचे हुए हैं, जैसा कि पिछड़ी हुई जातियों व कबीलों के प्रदेशों के लोगों द्वारा उपस्थित किये गये दावों से स्पष्ट है। आर्थिक दृष्टि से भी हमारी अवस्थायें विभिन्न हैं। जहां हममें एक तरफ कुछ करोड़पति हैं, वहां दूसरी तरफ ऐसे भी हैं जो

भूखों मरने के निकट पहुंचे चुके हैं या भूखों मर रहे हैं। शासन की दृष्टि से कहा जा सकता है कि विदेशियों की कृपा से हमें ऐसे प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया है, जिनमें विषमताओं की कमी नहीं है, और इससे अनेक नयी समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं। ऐसे महान् राष्ट्र के लिए, जिसके अंग्रेजों के आने से पूर्व के काल में विदेशी आक्रमणों द्वारा किन्तु मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा खंड और उप-खंड हो चुके हैं, हमें विधान तैयार करना है और ऐसा विधान तैयार करना है जो इनमें से बहुतों के उपयुक्त हो और उनको मान्य हो, या जो इनमें से अधिक-से-अधिक व्यक्तियों की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं की तुष्टि कर सके।

यह स्वाभाविक है कि जब हम ऐसे विशाल जनसमूह के लिए विधान तैयार करने के कार्य का श्रीगणेश करते हैं तो वे खंड-उपखंड और भाग-उपभाग और भी बढ़ जाते हैं। वास्तव में इस भाग अथवा उस भाग या उपभाग के स्वार्थों की रक्षा के लिए जो भी कुछ मिल सके, प्राप्त करने के लिए छीना-झपटी मची हुई है। इनमें से कितने ही स्वार्थ तो परस्पर विरोधी हैं, जैसाकि हम परिषद् में प्रकट किये गये विचारों से भी जान चुके हैं। हम जानते ही हैं कि भारत अज्ञानता और निर्धनता का देश है और देश की ऐसी हालत में तथाकथित राजनैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ लोगों का धार्मिक उन्माद से अनुचित लाभ उठाना बिल्कुल आसान है। संसार में ऐसा कोई भी अच्छा व आधुनिक विधान नहीं है, जो किसी एक धर्म पर आधारित हो। प्रत्येक धर्म का आधारभूत सिद्धांत, प्रादेशिक सीमाओं का विचार किये बिना, संसार की सामाजिक व्यवस्था में सुधार करना है। हम ''ईश्वर'' को चाहे जिस नाम से पुकारें, हमारा उद्देश्य यही रहता है कि मानव-समाज में भ्रातृत्व की भावना का प्रचार हो। धर्म का आरंभ मनुष्य जाति को ऊंचे स्तर तक उठाने के लिए होता है, किन्तु इसी धर्म को एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध जघन्य-से-जघन्य पाप करने और मनुष्य को गिराकर पशु बना देने के लिए किया जा रहा है।

इस प्रकार हमारे सामने एक व्यापक व पेचीदी समस्या है। हमारे सामने मुसलमानों और हिन्दुओं के विरोध, हिन्दुओं और हिन्दुओं के विरोध की समस्या है। ईसाइयों, एंग्लो-इंडियनों, दलित जातियों, और पिछड़ी हुई जातियों की समस्या है। हमें स्त्रियों के अधिकारों की भी समस्या को हल करना है।

प्रत्येक समुदाय व वर्ग अपने अधिकारों का ही ध्यान रखता है और अपने

[श्री एच.वी. पातस्कर]

लिए एक अधिकार-पत्र पाने का दावा करता है। श्रीमान्, मुझे भय है कि विभिन्न समुदायों के लिए अधिकार प्राप्त करने की इस छीना-झपटी में कहीं साधारण व्यक्ति के अधिकारों की उपेक्षा न हो जाये—और आज सब से अधिक आवश्यकता साधारण व्यक्ति के अधिकार-पत्र की है। जहां तक मैं समझता हूं, इस प्रस्ताव का उद्देश्य सिर्फ भारतीयों को ही नहीं बल्कि सारे संसार को यह बता देना है कि हम क्या करने जा रहे हैं। जिस किसी को भी हमारे इरादों के बारे में भ्रम होगा वह इस प्रस्ताव द्वारा दूर हो जायेगा और नेताओं के वक्तव्यों या प्रति-वक्तव्यों से जो काम नहीं हो सका है वह इस एक प्रस्ताव द्वारा हो जायेगा। लोगों को इस व्यापक प्रस्ताव से विश्वास हो जाना चाहिए कि हम जो विधान बनाने जा रहे हैं उसमें प्रत्येक भारतीय नर-नारी के हित की—जाति, धर्म, सम्प्रदाय आर्थिक व सामाजिक पद का, भेदभाव किये बिना—रक्षा हो सकेगी। जिन लोगों ने परिषद् से बाहर रहने का फैसला किया है, यदि उनकी इससे तुष्टि नहीं हुई तो वह किसी भी प्रकार न हो सकेगी। हम प्रत्येक समुदाय के प्रति न्यायपूर्ण व उचित व्यवहार करने की चेष्टा करेंगे। परन्तु साथ ही हम इस बात का भी ध्यान रखेंगे कि धमकियों से अथवा दवाब में आकर कहीं कोई गलत कार्य न कर बैठें। इस प्रकार अपने लक्ष्य का स्पष्टीकरण करके अपना कार्य करते हुए हम स्वाधीनता की ओर निर्भयतापूर्वक बढ़ेंगे और हमारे पथ में जो कठिनाइयां उपस्थित की जायेंगी उनका सामना करेंगे। हम अपने स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करेंगे और संसार में जो हलचल मची हुई है उसे दूर करने में स्वतंत्र भारत महत्त्वपूर्ण भाग ले सकेगा। श्रीमान्, इन शब्दों द्वारा मैं माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री एस.एच. प्रेटर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस प्रस्ताव पर प्रारंभिक वाद-विवाद में मेरे सम्प्रदाय के एक प्रतिनिधि ने विचार स्थगित रखने के डॉ. जयकर के संशोधन का समर्थन किया था। अब हम अनुभव करते हैं कि विचार स्थगित करना नियम विरुद्ध और अनुचित होगा, (वाह वाह) और परिषद् को इस प्रस्ताव को तुरन्त ही स्वीकार कर देना चाहिए।

प्रस्ताव में इस परिषद् का उद्देश्य निहित है अर्थात् यह कि शासन की ऐसी प्रणाली को जन्म दिया जाये और उसकी स्थापना की जाये, जिससे भारत को एक

स्वतंत्र सार्वभौम-सत्तासम्पन्न राज्य का पद प्राप्त हो। यह प्रस्ताव स्वीकार करके परिषद् इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहला कदम उठायेगी और घोषित करेगी कि भारत को घरेलू मामलों में पूर्ण नियंत्रण और अधिकार प्रदान करने की तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करने की हमारी इच्छा है।

यह स्वाधीनता-प्राप्ति इस बात पर निर्भर रहेगी कि हम अपनी स्वशासन की समस्या को हल कर पाते हैं या नहीं। प्रस्ताव में इस हल का आधार भी बताया गया है। यह प्रस्ताव वस्तुतः एक समझौता है। इसकी मुख्य बातें मंत्री प्रतिनिधि मंडल के प्रस्तावों के अंतर्गत आती हैं, जिनमें कांग्रेस और लीग के दावों के मध्य का रास्ता निकाला गया है। सम्भव है कि ये प्रस्ताव इस दल या उस दल के लिए अरुचिकर हों; परन्तु वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि लोग उस सत्य को स्वीकार करें, जो उन्हें सबसे अधिक अरुचिकर है और अपने आदर्शों का सबके हित के लिए बलिदान करें। दो सत्य ऐसे हैं, जिन्हें अवश्य मान लेना चाहिए और यह दोनों ही सत्य इस प्रस्ताव में सम्मिलित कर लिये गए हैं। इनमें पहला सत्य तो यह है कि जो भी विधान बने उसका आधार प्रान्तीय स्वायत्त शासन होना चाहिए और दूसरा यह कि आंतरिक विषयों में सभी स्वतन्त्र प्रान्तों तथा रियासतों के एक संघ की स्थापना होनी चाहिए। हिन्दुस्तान के इतिहास ने हमें सबक सिखाया है कि मौर्य सम्राटों के समय से अंग्रेजों के शासनकाल तक भारत ऐसे पृथक् राज्यों, राजतंत्रों और प्रान्तों का देश रहा है जिनमें सदा से पृथक् राष्ट्रीय विशेषताएँ और पृथक् राष्ट्रीय संस्कृतियां विद्यमान रही हैं और इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रादेशिक-प्रेम की भावनाएं भी बढ़ती रही हैं। आज भारत का जो राष्ट्रीय विकास हम देख रहे हैं वह साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण नहीं बल्कि इस प्रादेशिक-प्रेम ही का परिणाम है। ब्रिटिश राज्य और शासन के प्रारम्भिक काल में केन्द्रीकरण की नीति का अवलम्बन किया गया था, किन्तु विकेन्द्रीकरण की अजेय शक्तियों के आगे केन्द्रीकरण-नीति को हार माननी पड़ी और केन्द्र से अधिकाधिक शक्ति प्रान्तों को मिलती गई और प्रान्तीय शासनों की स्वतंत्रता दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही गई। प्रान्तीय स्वायत्त शासन हमारे ऊपर कहीं बाहर से नहीं लादा गया, बल्कि उसका विकास देश की नैसर्गिक आवश्यकताओं के कारण हुआ—एक ऐसे देश की आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप, जिसमें कितनी ही रियासतें और प्रान्त थे और जिसमें कितनी ही जातियों के लोग रहते थे, जिनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल स्वायत्त शासन

[श्री एस.एच. प्रेटर]

से ही हो सकती थी। इस प्रस्ताव में प्रान्तीय स्वायत्त शासन तथा अवशिष्ट अधिकार जो प्रान्तों को दिये गए हैं, इससे इस आवश्यकता की पूर्ति होती है। परन्तु यदि इतिहास ने हमें यह सिखाया है कि केवल प्रान्तीय स्वायत्त शासन के आधार पर नये विधान का निर्माण हो सकता है तो साथ ही उसने यह भी प्रामाणित कर दिया है कि इन सभी प्रान्तों का एक संघ और एक ऐसा राज्य भी बनना आवश्यक है, जिसमें एक ही केन्द्रीय सरकार रहे। विभिन्न प्रान्तों के मध्य संतुलन रखने वाली केन्द्रीय सत्ता का जब भी अभाव रहा है तब ही संघर्ष और विग्रह रहा है और देश के लिए इसका दुष्परिणाम दिखाई दिया है। इस प्रस्ताव में जैसे संघ की कल्पना की गई है केवल वैसे संघ द्वारा ही हम इस देश की जनता के लिए शान्ति और समृद्धि की आशा कर सकते हैं। केवल ऐसे संघ द्वारा ही हम राष्ट्र की अखंडता कायम रखते हुए विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकते हैं। केवल ऐसे संघ द्वारा ही भारत संगठित होकर विश्व राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त कर सकता है। इस संघ के विरुद्ध चाहे जो भी शक्तियां क्यों न हों, किन्तु उसकी स्थापना होगी अवश्य, क्योंकि उसका आधार वास्तविकता और सत्य है। वह मनुष्य की गहरी आवश्यकताओं पर आधारित होगा। परन्तु यदि हमारे संघ को सिर्फ भौगोलिक ही नहीं, बल्कि मनुष्यों के मस्तिष्कों और हृदयों का वास्तविक संघ बनना है तो उसकी नींव में संदेह अथवा इस या उस दल का लाभ न होकर सहानुभूति, समझदारी और समझौते की वह भावना होनी चाहिए जिसमें राजनीतिज्ञता का सार निहित है।

इस तरह मैं अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर पहुंच जाता हूं प्रस्ताव में देश के प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकार पर जोर दिया गया है। उसमें अल्पसंख्यकों के हितों की पूर्णरूप से रक्षा पर भी जोर दिया गया है। इस प्रश्न का सम्बन्ध सिर्फ लघु अल्पसंख्यक समुदायों से ही नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध जनता के मुख्य भागों—हिन्दुओं और मुसलमानों से भी है, जो देश के विभिन्न भागों में अल्पसंख्यकों की स्थिति में होंगे। इस प्रकार अल्पसंख्यकों की रक्षा विधान की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या बन जाती है, क्योंकि यदि हम एकता को अपना लक्ष्य मानते हैं तो यह एकता केवल उसी हालत में प्राप्त हो सकती है, जबकि प्रान्तों अथवा प्रान्तों के समूहों में रहने वाले अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक

व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की यथोचित व्यवस्था की जाये। अतः यह समस्या इस परिषद् की सद्भावना, सहानुभूति तथा समझदारी पर निर्भर रहेगी। हमारी सभा सार्वभौम-सत्ता सम्पन्न है, किन्तु हमें अपना कार्य साधारण व्यवस्थापकों की भांति न करना चाहिए, जो किसी भावना से अनुप्राणित नहीं होते और जिन्हें सिर्फ बहुमत का ही ध्यान रहता है। हमें अपना कार्य समझौते की बातें करने वालों की तरह करना चाहिए, जो प्रत्येक निर्णय करते समय उन लोगों की स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं, जिन पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ेगा। ऐसी परम्परा स्थापित कर लेने पर हमारा काम आसानी से होगा। इस परिषद् में हमें देश के विभिन्न समुदायों के बीच समझौता करने के साधन प्राप्त हैं। आइये, हम सब मिलकर प्रयत्न करें और इन सामूहिक प्रयत्नों द्वारा समझौते की भावना से प्रेरित होकर सर्वसाधारण का कल्याण करें। (*हर्ष-ध्वनि*)

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि माननीय डॉ. जयकर अपने संशोधन के सम्बन्ध में कोई वक्तव्य देना चाहते हैं। यह वक्तव्य वे अब दे सकते हैं।

***माननीय डॉ. एम.आर. जयकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, आपने मुझे जो कुछ मिनट अपने संशोधन के सम्बन्ध में वक्तव्य देने के लिए दिये हैं इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूं। यह वक्तव्य मुझे उस संशोधन के सम्बन्ध में देना है, जो मैंने इस बहस की आरम्भिक अवस्था में पेश किया था। इस सभा को स्मरण होगा कि यह संशोधन कुछ खास बातों के कारण पेश किया गया था, जिनमें पहली बात मुस्लिम लीग व रियासतों को कार्यवाही में सुगमता से सम्मिलित होने का अवसर देना था। जहां तक मुस्लिम-लीग का सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूं कि सभा ने मेरे संशोधन में उपस्थित किये गये सुझाव को बहुत कुछ स्वीकार कर लिया था। परिषद् ने अपनी कार्रवाई 20 जनवरी तक के लिए स्थगित कर दी थी। अब परिषद् और भी आगे बढ़ चुकी है और उसने सम्राट की सरकार का 6 दिसम्बर वाला वक्तव्य भी स्वीकार कर लिया है। परिषद् ने यह सब किया, किन्तु मुस्लिम लीग अभी तक नहीं आई। लीग आना चाहती भी है या नहीं—इसे कोई नहीं जानता। लीग ने 29 जनवरी तक अपने इरादों पर प्रकाश न डालने का निश्चय किया है, यद्यपि लीग भली भांति जानती थी कि उसकी बैठक से 9 दिन पहले—यानी इस महीने की 20 तारीख को इस परिषद् की बैठक हो

[माननीय डॉ. एम.आर. जयकर]

रही है। अपने भाषण के बीच में मैंने समझौते के रूप में एक सुझाव उपस्थित किया था कि यदि परिषद् मंत्री प्रतिनिधि-मंडल के वक्तव्य के 19वें पैरे की छठी उप-धारा के अनुसार सेक्शनों की बैठकें होने और उनके विधान बनने तक ठहरने को तैयार न हो, क्योंकि ऐसा बहुत देर बाद होगा—तो परिषद् को कम-से-कम अपने अगले अधिवेशन यानी 20 जनवरी तक तो अवश्य ही ठहरना चाहिए, क्योंकि इससे मुस्लिम लीग को विचार करके निश्चय करने का समय मिल जायेगा। चूंकि सुझाव मैंने किया था और परिषद् ने उसे स्वीकार कर लिया था इसलिए सम्मान का तकाजा है कि मैं अपने संशोधन को और आगे न बढ़ाऊं। (*हर्ष ध्वनि*) साथ ही मैं यह भी नहीं प्रकट करना चाहता कि जिन इरादों से प्रेरित होकर मैंने अपना संशोधन उपस्थित किया था उनसे मैं मुंह मोड़ रहा हूं, किन्तु मैंने जो सुझाव दिया था, उसे परिषद् ने मानकर अपना वचन पूरा कर दिया है। इसलिए मैं अपने संशोधन को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता। परन्तु ऐसा करते समय मैं सभा के आगे कुछ विचार रखना चाहता हूं। यदि उन विचारों को परिषद् पसन्द करे तो परिषद् को जो भी उचित जान पड़े वह स्वयं निश्चय कर सकती है। ये विचार कुछ थोड़े से हैं और मैं आपसे कुछ मिनट तक धैर्य रखने का अनुरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य कोई नया प्रस्ताव कर रहे हैं?

***माननीय डॉ. एम.आर. जयकर:** श्रीमान्, मैं कोई नया प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं। मैं तो सिर्फ यही सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि परिषद् के सामने जो प्रस्ताव उपस्थित है उसके सम्बन्ध में कोई निश्चय करते समय परिषद् को कुछ विचारों...।

***माननीय पं. गोविन्द वल्लभ पंत** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं कह सकता हूं कि जहां तक मैं समझता हूं, डॉ. जयकर ने अपना संशोधन वापस ले लिया है। संशोधन वापस लेने के बाद उनके लिए नया भाषण देना अनुचित ही नहीं नियम-विरुद्ध भी होगा। पिछले अधिवेशन में जब उन्होंने भाषण दिया था तो उस समय उन्हें अपने विचार पूरी तरह प्रकट करने का अवसर मिला था। अब संशोधन वापस लेने के बाद... *(कृपया माइक्रोफोन पर चले जाइये)*... मैं कह रहा था कि डॉ. जयकर अपना संशोधन वापस ले चुके हैं। किसी व्यक्ति को जो भाषण दे चुका हो यदि वह चाहे तो अपना संशोधन वापस लेने का अवसर

दिया जा सकता है। अपना संशोधन वापस लेने के बाद उन्हें नया संशोधन इस अवस्था में पेश करके परिस्थिति को और न उलझा देना चाहिए। वे अपने विचार संशोधन के संक्षिप्त रूप में उपस्थित करें या नहीं—इससे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। यदि वे इस अवस्था में एक नया सुझाव उपस्थित करके परिषद् को कष्टप्रद परिस्थिति में डाल देते हैं तो यह कठिनाई उसे संशोधन का नाम न देने से दूर नहीं हो जाती। वह संशोधन फिर भी रहता है। अब इसका समय नहीं है। इसलिए विचार प्रकट करने के रूप में भी कोई नया प्रस्ताव उपस्थित करने की आजादी उन्हें नहीं मिल सकती। उन्हें जो विशेष अवसर मिला था उसकी अवधि अब बीत चुकी है। अब उनसे अपना स्थान ग्रहण करने का अनुरोध किया जा सकता है। (एक आवाज : क्या कोई नया प्रस्ताव उपस्थित किया जा रहा है?)

***अध्यक्षः** अब कोई नया प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। मैंने तो डॉ. जयकर को संशोधन वापस लेते हुए अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण का ही अवसर दिया था।

***माननीय डॉ. एम.आर. जयकरः** अपना संशोधन वापस लेते हुए और इसका कारण बताते हुए मुझे इस सभा के आगे उसके विचारार्थ कुछ बातें रखने का भी अधिकार है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त व बरार : जनरल): मैं कहना चाहता हूं कि माननीय सदस्य को अपना वक्तव्य पूरा करने का अवसर दिया जाये (वाह, वाह)। सिर्फ इसीलिए कि उन्होंने संशोधन वापस लेने का अपना निश्चय प्रकट कर दिया है, उन्हें वक्तव्य देने से नहीं रोका जा सकता। अध्यक्ष महोदय ने उन्हें वक्तव्य देने का ही अवसर दिया था। वे कोई नया संशोधन उपस्थित नहीं कर रहे हैं, इसलिए उन्हें अपना वक्तव्य पूरा करने दिया जाये। मान लीजिये कि अपने भाषण के अन्त तक वे संशोधन वापस लेने का उल्लेख न करते तो जिन माननीय सदस्य ने उनका भाषण आगे होने देने पर आपत्ति की है, क्या उनकी आपत्ति नियमानुसार होती? इसलिए सिर्फ इस वजह से कि डॉ. जयकर संशोधन वापस लेने के वाक्य का प्रयोग कर चुके हैं, उनके अपना भाषण समाप्त करने और जो कुछ वे कहना चाहते हैं वह कहने देने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए। ऐसा करने की उन्हें आजादी होनी चाहिए और हम उन्हें सुनने के लिए तैयार हैं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त व बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, पिछले भाषणकर्त्ता से इस सम्बन्ध में मेरा मतभेद है। डॉ. जयकर निश्चित रूप से कह चुके हैं कि वे दो सुझाव उपस्थित करना चाहते हैं। अब, श्रीमान्, यदि आप उन्हें वे सुझाव उपस्थित करने देते हैं तो आपको अन्य सदस्यों को अवश्य ही उन सुझावों पर उनके औचित्य या अनौचित्य पर—कुछ कहने का अवसर देना पड़ेगा। इस प्रकार यह सभा एक कष्टप्रद स्थिति में पड़ जायेगी, जैसा कि माननीय पंतजी ठीक ही कह चुके हैं। डॉ. जयकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वे दो सुझाव उपस्थित करना चाहते हैं। वे सुझाव क्या हैं—मैं नहीं जानता। ये सुझाव अच्छे या बुरे जैसे भी हों परन्तु जब तक दूसरे सदस्यों को उनके सम्बन्ध में मत नहीं प्रकट करने दिया जाता तब तक उन्हें दर्ज नहीं किया जा सकता। इसलिए माननीय श्री पंत द्वारा उपस्थित किये गये सुझाव का मैं अनुमोदन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में इस सम्बन्ध में अब और बहस की आवश्यकता नहीं है। मैं स्थिति को समझता हूं। मेरा विचार है कि डॉ. जयकर को संशोधन के सम्बन्ध में वक्तव्य देने का अधिकार अब नहीं रह गया है।

अब मैं सभा के सामने यह प्रस्ताव रखूंगा कि वह संशोधन वापस लेने की अनुमति प्रदान करती है या नहीं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***श्री सी.एम. पुनाका** (कुर्ग): अध्यक्ष महोदय, माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव का मैं हृदय से समर्थन करता हूं। ऐसा करते समय मैं सभा का ध्यान उस बहस की ओर आकर्षित करता हूं, जो इस सम्बन्ध में परिषद् के बाहर हो चुकी है। इस बात पर आपत्ति की गयी है कि परिषद् को इस प्रकार का प्रस्ताव पास करने का कोई अधिकार है? मेरे ख्याल में अपना कार्य आरम्भ करने से पूर्व हमारे लिए एक ऐसा प्रस्ताव पास करना आवश्यक ही है, जिसमें बताया गया हो कि हम यहां किस उद्देश्य से एकत्र हुए हैं। इस विचार से यह कहा जा सकता है कि इस सम्बन्ध में हमारा कार्य सरकारी वक्तव्य के विरुद्ध नहीं है। 16 मई, सन् 1946 ई. के वक्तव्य में जो कुछ कहा गया है, हम बहुत कुछ उसी का समर्थन कर रहे हैं। सरकारी वक्तव्य में निर्धारित सीमाओं का हमने किंचित् भी अतिक्रमण नहीं किया है।

जहां तक अन्य बातों का सम्बन्ध है, मैं सभा का ध्यान भारत की जनता में निहित सार्वभौम सत्ता सम्बन्धी अधिकारों की तरफ आकर्षित करता हूं। सार्वभौम सत्ता सम्बन्धी अधिकारों—खासकर रियासतों में सार्वभौम सत्ता सम्बन्धी अधिकारों के विषय में बाहर कुछ विवाद चल रहा है। ब्रिटिश भारत में सार्वभौम सत्ता जनता में निहित होने पर कोई आपत्ति नहीं करता और जब ऐसा है तो रियासतों में प्रजा की सार्वभौम सत्ता—सम्पन्नता के विरुद्ध क्या तर्क उठाया जा सकता है? श्रीमान्, यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि ऐसी रियासतें हैं, जिनमें राजा जनता पर राज्य करते हैं और ऐसी भी रियासतें हैं जिनमें बिना राजा के ही राजकाज चलता है। परन्तु जनता के बिना राजा की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मानवीय कार्यों में जनता की सार्वभौम सत्ता-सम्पन्नता एक माना हुआ तथ्य है, जिसका पता हमें ऐसे प्रस्तावों द्वारा ही नहीं, वरन् इतिहास से भी लगता है, जिसने प्रमाणित कर दिया है कि जनता ही राज्य की स्वामिनी है और वही राजे-महाराजों को शासन के प्रधान का पद देती है।

श्रीमान्, अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इसका दावा करने के बजाय कि एक अल्पसंख्यक समुदाय में लाखों या करोड़ों व्यक्ति हैं, मेरे विचार में हमें उन लाखों और करोड़ों व्यक्तियों का ध्यान करना चाहिए, जिन्हें अभी जन्म लेना है। हम यहां सिर्फ वर्तमान पीढ़ी के ही लिए विधान तैयार नहीं कर रहे हैं हम यहां बैठ कर भावी पीढ़ियों के लिए भी विधान बना रहे हैं और यह विधान वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ जो भावी पीढ़ियों के लिए बनाया जा रहा है इससे हमारे कर्त्तव्य की गहनता और भी बढ़ गयी है। इसलिए हमें अधिक विचारशील, अधिक जिम्मेदार और अपने इरादों के सम्बन्ध में अधिक सुनिश्चित होना चाहिए। ऐसा करते समय यह हमारे अधिकार और कार्य-सीमा के भीतर की बात है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम कार्य कर रहे हों उसे सामने रखें। सिर्फ एक-दूसरे को और अपनी करोड़ों जनता को ही नहीं बल्कि संसार को भी हमें अभी से बताना है कि हमारे सिद्धांत क्या हैं और हम किसलिए यहां एकत्र हुए हैं। इस प्रस्ताव में हमारे चिरकांक्षित उद्देश्य निहित हैं और इसीलिए श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं।

श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी (संयुक्तप्रांत : जनरल): माननीय सभापति जी और साथियों, यह स्वाभाविक ही था कि जब हम अपने देश के लिए शासन-विधान बनाने जा रहे हैं उस समय हम इस बात पर सोच लें कि हमारा भावी शासन-विधान,

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

स्वतन्त्र भारत का शासन-विधान, किन बुनियादी उसूलों पर तैयार किया जायेगा। इसलिए जो प्रस्ताव उन बुनियादी उसूलों पर हमारे सामने हमारे पूज्य नेता पं. जवाहरलाल नेहरू जी ने पेश किया है उसका मैं स्वागत करता हूं। इस प्रस्ताव के कुछ विशेष अंग हैं जिनकी तरफ मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। अन्य बातों के अतिरिक्त उक्त बुनियादी उसूल प्रस्ताव के 4, 5 और 6 पैराग्राफों में दिये हुए हैं। जहां तक इन सिद्धांतों का सम्बन्ध है, जो सिद्धांत इन पैराग्राफों में कहे गये हैं उनसे मैं पूर्णरूप से सहमत हूं। परन्तु उससे सहमत होते हुए भी मैं एक बात अवश्य कहना चाहता हूं और वह यह है कि यह उसूल सिर्फ हमारे ही शासन-विधान के लिए बुनियादी उसूलों के तौर पर नहीं माने जा रहे हैं, बल्कि दुनिया में शायद कोई भी शासन विधान ऐसा नहीं है जहां पर इसी तरह के बुनियादी उसूल माने न गये हों। लेकिन भिन्न-भिन्न देशों के शासन विधानों के अन्दर उन बुनियादी उसूलों के होते हुए भी या वहां के राजनीतिज्ञों द्वारा इस बात का ऐलान किये जाने के बावजूद भी कि इन उसूलों पर वहां का शासन-विधान चलेगा, हम देखते हैं कि उसूल व्यवहार रूप में माने नहीं जाते। आप अगर इंग्लैंड का शासन-विधान देखें अथवा फ्रांस, अमेरिका या डच का शासन-विधान देखें या वहां के राजनीतिज्ञों के, वहां के शासकों के ऐलानों को देखें, तो आपको मालूम होगा कि किसी न किसी शक्ल में यह सिद्धांत उनको भी मान्य है। लेकिन बावजूद इस बात के हम यह देखते हैं कि उन वसूलों पर वे साम्राज्य अमल नहीं करते और उन्हें कार्यरूप में नहीं बरतते। आप देख रहे हैं कि आज एशिया भर में, इंडोचायना में, जावा में, बर्मा और हिन्दुस्तान में वे यूरोपीय साम्राज्य जिनके शासन-विधान में वे उसूल मौजूद हैं फिर भी उन पर चलने की कोश्शि नहीं करते। इसलिए यह जरूरी है कि हम इस बात को सोचें कि किस तरह से हम इन उसूलों पर चल सकते हैं और व्यावहारिक रूप में हम इन उसूलों को अमल में ला सकते हैं यह हमारे लिए बहुत आवश्यक बात है।

मैं आपका ध्यान, जैसा कि मैंने पहले ही कहा था, तीन पैराग्राफों की तरफ खास तौर से दिलाना चाहता हूं। चौथे पैराग्राफ में यह कहा गया है कि हम एक ऐसे सर्वाधिकार पूर्ण स्वतन्त्र भारत (सौवरिन इंडिपेंडेंट इंडिया) का विधान (कांस्टीट्यूशन) बनायेंगे जिसमें सब शक्ति तथा अधिकार 'जनता से प्राप्त' (डिराइब्ड फ्राम दी पीपुल) हों।

जहां तक इस उसूल का ताल्लुक है वह बहुत सही है, मुनासिब है और हर एक व्यक्ति इस उसूल का स्वागत करेगा। लेकिन जो राजनीति के विद्यार्थी

हैं वे जानते हैं कि इस उसूल का बहुत-सी जगहों में किस तरह से दुरुपयोग किया गया है। अभी मेरे मित्र ने इंग्लैंड के शासन-विधान का जिक्र किया था और कहा था कि वहां पर किस तरह से इसका दुरुपयोग किया गया था। कई शताब्दियां गुजरीं जबकि इंग्लैंड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री हाब्स ने इस सिद्धांत का समर्थन किया था कि प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति 'जनता से प्राप्त' होती है, लेकिन वहां के राजाओं ने इस सुन्दर सिद्धान्त का दुरुपयोग किया। राजाओं ने यह तो माना कि 'जनता से शक्ति आती है', लेकिन साथ ही साथ उन्होंने दुनिया के सामने यह रखा कि जब एक मर्तबा जनता ने शासकों को यह शक्ति दे दी, तो फिर वह जनता के हाथ में नहीं रह गई और इसका दुष्परिणाम यह हुआ, जो हम राजाओं के दैवी अधिकार (डिवाइन राइट्स ऑफ किंग्स) की शक्ल में अपने इतिहास में देखते हैं। फलतः यह जरूरी है कि जहां हम यह कहते हैं कि सब शक्ति 'जनता से प्राप्त' (डिराइब्ड फ्राम दी पीपुल) है, वहां हमें यह भी कहना चाहिए कि यह शक्ति निरन्तर जनता के हाथ में रहेगी (शैल वेस्ट आन दी पीपुल)। इसलिए मैंने इस प्रस्ताव में यह संशोधन करने का प्रयत्न किया था कि 'शक्ति सदैव ही जनता के हाथ में रहेगी'। परन्तु अनेक कारणों से वह संशोधन इस प्रस्ताव में नहीं आ सका। अतः जब हम शासन-विधान बनाने बैठें, उस समय हमें इस बात को सोच लेना चाहिए और अपने विधान में इस सिद्धान्त का समावेश कर देना चाहिए।

जहां तक पांचवें और छठे पैराग्राफों का सम्बन्ध है, इनमें जो उसूल कहे गए हैं, वह बहुत ही सुन्दर और उचित हैं लेकिन तमाम देशों के शासन-विधानों में किसी न किसी शक्ल में यह उसूल मौजूद हैं लेकिन उन पर अमल नहीं किया जाता। लिहाजा इन उसूलों को व्यावहारिक रूप में कैसे लाया जाये, इस पर हमें खास तौर से सोचना होगा और उस समय, जबकि हम शासन-विधान तैयार करना शुरू करेंगे, हमें इस पर विशेष ध्यान देना होगा। यहां पर कहा गया है कि जो शासन-विधान बनेगा और उस शासन-विधान के अनुसार जो राज स्थापित होगा उसमें सबके साथ ''सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय'' होगा। ठीक है, यह बहुत अच्छा सिद्धान्त है, लेकिन आप जानते हैं कि जिसके हाथ में राज-शक्ति होती है, वह ''न्याय'' का अर्थ अपने ही अनुसार लगाता है। अगर कल हमारे देश में पूंजीवादियों के हाथ में राज्य-सत्ता आ जावे, तो वे आर्थिक और राजनैतिक न्याय का अर्थ अपने ही ढंग से लगावेंगे। लेकिन अगर वह शक्ति वास्तव में जनता

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

के हाथ में आती है, तो उनके प्रतिनिधि उसका अर्थ बिल्कुल ठीक ढंग पर लगावेंगे। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने शासन-विधान में कोई ऐसा संरक्षण (सेफगार्ड) रखें, जिसमें यह न हो कि जिन लोगों के हाथ में राज-शक्ति जाये, वह इन सिद्धान्तों के अर्थ मनमाने ढंग पर लगावें। इसका एक ही इलाज हो सकता है कि वह यह है कि जब हम शासन-विधान तैयार करने बैठें, उस समय हम पहले ही से यह निश्चित कर दें कि हमारा जो शासन-विधान बनेगा, और उस शासन-विधान के अन्तर्गत जो राज्य स्थापित होगा, वह समाजवादी आधार पर होगा। अगर हम पहले से ही यह निश्चित न कर देंगे तो इस बात का खतरा हो सकता है कि आगे चल कर शासक-वर्ग इन सब सिद्धान्तों का अर्थ अपने मनमाने ढंग से लगावे और जनता को उससे जितना लाभ होना चाहिए, उतना न हो।

आपके सामने मुस्लिम लीग और जिन्ना साहब के मुताल्लिक बहुत कुछ कहा गया है और उनमें से बहुत-सी बातें ठीक हैं। लेकिन मैं आपसे अर्ज करना चाहता हूं कि अगर आज आप शासन-विधान बनाते समय यह निश्चित कर दें कि आपका शासन-विधान समाजवादी आधार पर होगा तो इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत-से मुसलमान भाई दिल से और खुशी से हमारे साथ चलने को तैयार हो जायेंगे। जितने भी अल्पमत हैं, चाहे वे मुसलमान हों या हमारे हरिजन भाई, वे सभी अपने दिमाग में इस बात का संदेह और भय रखते हैं कि जब शासन-विधान बन जायेगा तो नहीं मालूम कि किस तरह के शासक आयें और इन उसूलों के माने किस तरह से लगायें। लिहाजा अगर उनके भय और संदेह को दूर करना है तो हमें अभी से यह निश्चय कर देना चाहिए कि जो शासन-विधान हम बनायेंगे और उस विधान के अनुसार जिस तरीके की सरकार बनेगी वह समाजवादी आधार पर होगी; वह निश्चय ही पूंजीवाद के आधार पर नहीं होगी। यह हमें स्पष्ट कर देना चाहिए। इसलिए मैंने एक तरमीम भी इस सिलसिले में की थी और यह सुझाव रखा था कि भारतवर्ष के पहले 'समाजवादी' (सोशलिस्ट) जोड़ दिया जाये। मैं फिर भी दरख्वास्त करूंगा कि यदि हम इस प्रस्ताव के सिद्धान्त को अमल में लाना चाहते हैं तो हमारे सामने एक यही उपाय है कि हम अपना शासन-विधान समाजवादी आधार पर बनायें। पं. जवाहरलालजी ने आरम्भ में भाषण देते हुए इन मेरी तरमीमों के बारे में कुछ बातें कही थीं, उन्होंने यह स्पष्ट सम्मति दी थी कि आगे चलकर

इस समाजवादी आधार पर ही अपना शासन-विधान बनाना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने यह कहा कि इस समय हम यह नहीं चाहते कि इस पर किसी तरीके का मतभेद पैदा हो। लेकिन मैं फिर बहुत अदब के साथ कहूंगा कि इसमें मतभेद का सवाल नहीं है। यह तो एक उसूल का सवाल है और अगर हम वास्तव में देश की गरीब जनता को लाभ पहुंचाना चाहते हैं, अगर हम यह चाहते हैं कि सिर्फ यही नहीं कि अंग्रेजी हुकूमत यहां पर खत्म हो, बल्कि साथ ही साथ हमारा सामाजिक और आर्थिक ढांचा ऐसा बने जिसमें गरीब लोगों को पूरे तौर से आगे बढ़ने का मौका मिले, तो यह जरूरी है कि हम जो शासन-विधान तैयार करें वह समाजवाद के आधार पर हो। मैं समझता हूं कि हमारे देश में अल्पमतों (माइनोरिटीज) की जितनी समस्याएं हैं, चाहे वे मुसलमानों की हों, चाहे हरिजन भाइयों की हों या अन्य समूहों की हों, उनका बहुत कुछ हल इससे हो जायेगा। यह ठीक है कि हमारे बीच में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो समाजवाद के उसूलों को नहीं मानते हैं। लेकिन जहां तक कांग्रेस का सम्बन्ध है वह समाजवाद के उसूलों को पहले ही मान चुकी है। उसने अपने चुनाव के घोषणा-पत्र में बहुत स्पष्ट कहा है कि हम सामन्तशाही के तरीके को खत्म करना चाहते हैं और साथ ही साथ यह भी घोषित किया है कि हम बड़े-बड़े उद्योगों (इंडस्ट्रीज) का भी राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं। ऐसी सूरत में कांग्रेस ने समाजवाद के प्रारम्भिक नियमों को पहले ही स्वीकार कर लिया है और जब उसने उसे स्वीकार कर लिया है तो हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम जो शासन-विधान यहां बैठकर बनावें वह उसी आधार पर हो, हो सकता है कि उस पर कुछ लोगों को एतराज हो, मगर मैं समझता हूं कि 100 में से 99 या 98 ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें उसमें किसी तरह का एतराज न होगा। जनता को तो पूरे तौर से तभी लाभ हो सकता है, जब हम इस सिद्धांत को अपना लें और इसी आधार पर शासन-विधान तैयार करें।

एक और बुनियादी बात की ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। वह यह है कि जब हम इस बात का ऐलान करने जा रहे हैं कि हमारे देश में स्वतंत्र सर्वाधिकारपूर्ण प्रजातंत्र (इंडिपेंडेंट सोवरिन रिपब्लिक) कायम हो। तो ऐसी सूरत में हमें यह भी सोच लेना चाहिए कि हमारी यह विधान-परिषद् स्वयं सर्वाधिकारपूर्ण संस्था (सोवरिन बॉडी) है या नहीं है। अगर स्वयं हमें पूर्णाधिकार (सोवरिन राइट्स) प्राप्त नहीं हैं, तो हम कोई ऐसा शासन-विधान तैयार नहीं कर

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

सकते जिसे पूरे अधिकार (सोवरिन राइट्स) प्राप्त हों। इस प्रस्ताव में कहा गया है कि यह विधान-परिषद् स्वतंत्र पूर्णाधिकारपूर्ण प्रजातंत्र (इंडिपेंडेंट सोवरिन रिपब्लिक) घोषित (प्रोक्लेम) करना चाहती है और ऐसा करने का निश्चय करती है। ऐसी हालत में एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा यह भी ऐलान कर देना चाहिए कि हमें शासन-विधान सम्बन्धी पूरे अधिकार प्राप्त हैं।

16 मई के स्टेट-पेपर के अनुसार आपके शासन सम्बन्धी अधिकारों में अनेक प्रकार की सीमायें रखी गई हैं। मुझे उसकी तफसील में जाने की जरूरत नहीं है। आप सभी सज्जन अच्छी तरह से जानते हैं। लेकिन मैं इस सिलसिले में एक बात कह देना चाहता हूं कि हम आज अगर इस कांस्टीट्यूएंट असेम्बली में मिल रहे हैं तो इसलिए नहीं मिल रहे हैं कि उक्त स्टेट-पेपर ने हमारी इस संस्था का निर्माण किया है बल्कि हमारे देश ने जो त्याग और तपस्या पिछले 50-60 वर्षों से और खास तौर से पिछले 5 या 6 वर्षों से किया है उसी का यह परिणाम है कि यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली आपके सामने आई और अंग्रेज राजनीतिज्ञ इस बात पर मजबूर हुए कि आपकी कांस्टीट्यूएंट असेम्बली बनावें और आपको अधिकार देने की बात कहें। मैं आपसे बहुत स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि हम लोग यहां पर जो जमा हुए हैं वह इस स्टेट-पेपर के परिणामस्वरूप नहीं बल्कि उस आंदोलन के परिणामस्वरूप जो हमने पिछले 5 या 6 वर्षों के अंदर किया है। वह सन् 1942 ई. के आंदोलन का परिणाम है जब कांग्रेस ने क्विट-इंडिया (भारत छोड़ो) का प्रस्ताव देश के सामने पेश किया था। यह विधान-परिषद् आजाद हिंद फौज की बहादुराना कार्यवाहियों का परिणाम है जिसके कारनामे आज हमारे सामने हैं। यह हमारे पूज्य महान् क्रांतिकारी नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के कारनामों का परिणाम है जिन्होंने इस बात को दिखला दिया कि किस तरह से देश की आजादी के लिए संगठन किया जा सकता है और बड़ी-बड़ी शक्तियों से लड़ा जा सकता है। लिहाजा, यह कहना कि स्टेट-पेपर के जरिये से इस विधान-परिषद् का संगठन हुआ, बिल्कुल गलत है। हमारे राष्ट्र ने 5 या 6 वर्ष के अंदर इस देश के बाहर और भीतर जो कुछ भी किया उसी का आज यह परिणाम है। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि हमारी शक्ति जनता से आई है, न कि ब्रिटिश पार्लियामेंट से। अतः हमें इस समय इस बात का ऐलान कर देना चाहिए कि यह कांस्टीट्यूएंट

असेम्बली खुद एक सर्वाधिकारपूर्ण संस्था (सोवरिन बॉडी) है। उसको शक्ति जनता से प्राप्त हुई है, न कि ब्रिटिश पार्लियामेंट से और कोई भी सीमा जो ब्रिटिश पार्लियामेंट अनुचित तरीके से हमारे ऊपर लगायेगी, उस सीमा को मानने के लिए हम कतई तैयार नहीं होंगे। मैं उम्मीद करता हूं कि जो उसूल इस प्रस्ताव में दिये गये हैं उनको कार्यान्वित करने के लिए हम तमाम उन तरीकों को अख्तियार करेंगे जिन तरीकों से हम वाकई अपने देश में एक स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित कर सकें। और यह स्पष्ट है कि यह हमारा स्वतंत्र राष्ट्र समाजवाद के आधार पर होगा ताकि हमारे देश की गरीब जनता को ठीक-ठीक लाभ हो सके।

मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं, उन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का स्वागत करता हूं।

***अध्यक्षः** इस प्रस्ताव पर हम कई दिन तक बहस कर चुके हैं। जहां तक मैं निर्णय कर पाया हूं, सदस्यगण अब बहस समाप्त करने के पक्ष में हैं इसलिए मुझे आशा है कि कल सुबह हम बहस समाप्त करके इस प्रस्ताव को निबटा सकेंगे।

अब सभा कल 11 बजे तक के लिए स्थगित हो जायेगी।

कल हम दूसरा प्रस्ताव उठायेंगे, जिसकी सूचना पं. जवाहरलाल नेहरू ने दी है और जिस पर आज विचार नहीं किया जा सका है।

***श्री के. संतानम्** (मद्रास : जनरल): क्या कल बजट पर भी विचार होगा?

***अध्यक्षः** कल हो सकता है। वह कार्य-सूची में है।

इसके बाद असेम्बली बुधवार, 22 जनवरी, सन् 1947 ई. को 11 बजे तक के लिए स्थगित हो गयी।